॥ ओ३म् ॥

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(सारे संसार को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनाओ)

शताब्दी स्मृति ग्रन्थमाला का सातवां पुष्प

वैदिक सिद्धान्त विमर्श

लेखक

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

शताब्दी स्मृति ग्रन्थमाला का सातवां पुष्प

वैदिक सिद्धान्त विमर्श

लेखक

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम.ए.

: प्रकाशक :

शताब्दी स्मृति ग्रन्थमाला प्रकाशन समिति

आर्यसमाज शहर, बड़ा बाजार, सोनीपत

Scanned by CamScanner

वैदिक सिद्धान्त विमर्श

प्रकाशक : **शताब्दी स्मृति ग्रन्थमाला प्रकाशन समिति**
आर्यसमाज शहर, बड़ा बाजार,
सोनीपत (हरियाणा)
चलभाष : 09812560233

संस्करण : **नवम्बर 2014**

मूल्य : 25/-

मुद्रक : **आर्यावर्त प्रिंटर्स**
सौम्या सदन, गोकुल विहार, अमरोहा-244221 (उ.प्र.)
चलभाष : 09412139333, 08273236003

प्रकाशकीय

शताब्दी स्मृति ग्रन्थमाला प्रकाशन समिति का यह सातवां पुष्प आपकी सेवा में समर्पित है। आर्यजगत के मूर्धन्य विद्वान पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय, एम. ए. द्वारा लिखित यह बहुमूल्य पुस्तक वैदिक प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद द्वारा सन् 1972 में पहली बार प्रकाशित हुई थी, जिसका पुनर्प्रकाशन उक्त समिति द्वारा संभव हुआ है। इस पुस्तक में धर्म, वेद एवं ईश्वर के विषय में प्रश्नोत्तर शैली में सारगर्भित विवेचन किया गया है। यह पुस्तक विद्वानों से लेकर जन सामान्य तक पठनीय तथा संग्रहणीय है।

निश्चय ही, पं. उपाध्याय जी द्वारा लिखित यह पुस्तक अत्यन्त सुरूचिपूर्ण, सरल एवं हृदयग्राह्य शैली में है, जिसे बार-बार पढ़ने का मन होता है। यह ग्रन्थ जहां सत्य-असत्य के विच्छेदन में सहायक है वहीं ज्ञान एवं बुद्धि वर्धन के साथ ही, सुविज्ञ पाठकों के लिए आनन्दामृत के पान सरीखा है। आर्यसमाज शहर, बड़ा बाजार, सोनीपत द्वारा स्थापित शताब्दी स्मृति ग्रन्थमाला प्रकाशन समिति ने अपनी संस्था के शताब्दी वर्ष में आर्ष ग्रन्थों को प्रकाशित तथा स्वल्प मूल्य में वितरित करने का संकल्प लिया है। यह पुस्तक उसी का प्रतिफल है। आशा है कि इससे सुविज्ञ जन धर्म, वेद व ईश्वर के विषय में भ्रमोन्मूलन के साथ ही, इनके यथार्थ स्वरूप को जान सकेंगे। वस्तुतः तभी विद्वान लेखक एवं प्रकाशन समिति की साधना की सफल परिणति होगी।

इन्हीं भावों के साथ, सभी सहयोगियों, विद्वानों, जिज्ञासुओं, व सुयोग्य पाठकों का हार्दिक धन्यवाद;

सुदर्शन आर्य
संयोजक
(चल. : 9416692751)

रामचन्द्र आर्य
प्रधान
(चल. : 9466945596)

शताब्दी स्मृति ग्रन्थमाला प्रकाशन समिति, सोनीपत

प्रवीण आर्य
मंत्री
(चल. : 9813548866)

सुभाष चाँदना
प्रधान
(चल. : 9868301897)

आर्यसमाज, शहर, बड़ा बाजार, सोनीपत (हरियाणा)

Scanned by CamScanner

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

लेखक परिचय

श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय का जन्म 06 सितम्बर सन् 1881 ई. को काली नदी के तट पर स्थित नँदरई (कासगंज) में हुआ। 10 वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो गया। आपने कष्ट के साथ हिन्दी और अंग्रेजी की मिडिल कक्षाएं उत्तीर्ण कीं। मैट्रिक होते ही सरकारी नौकरी करके परिवार का पालन-पोषण प्रारम्भ किया। इन्टर, बी.ए. और एम.ए. प्राइवेट रूप में पास किया। आपने सन् 1912 में एम.ए. अंग्रेजी विषय में और 1923 में एम.ए. दर्शन विषय लेकर उत्तीर्ण किया। पेंशन का लालच न करते हुए सन् 1918 में सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दिया। डी.ए.वी. कालेज, इलाहाबाद में प्रधानाचार्य पद पर कार्य करना प्रारम्भ किया।

उपाध्याय जी ने दर्शन तथा सिद्धांत सम्बन्धी अनेकों उच्च कोटि के ग्रन्थ लिखे। 1931 में 'आस्तिकवाद' ग्रन्थ पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'मंगलाप्रसाद पुरस्कार' प्रदान किया। सन् 1931 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के झांसी अधिवेशन में दर्शन परिषद् के सभापति निर्वाचित हुए। 1941 से 1944 तक आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के प्रधान रहे। हैदराबाद सत्याग्रह में श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के आदेश से निरन्तर कार्य करते रहे। 1946 से 1951 तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली के प्रधानमंत्री रहे। 1950 में **'वैदिक कल्चर'** पर अमृतधारा पुरस्कार मिला। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 1951 में **'कम्यूनिज्म'** ग्रन्थ पर, 1952 में **'ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य'** पर, और 1955 में **'जीवन-चक्र'** पर पुरस्कार मिले। 1950 में आर्य प्रतिनिधि सभा दक्षिणी अफ्रीका की रजत जयन्ती में सम्मिलित होने गये, और कई मास तक उस देश में भारतीय संस्कृति का प्रचार करते रहे। सन् 1951 में बर्मा, थाईलैण्ड और सिंगापुर की यात्राएं कीं। आपने कश्मीर से लेकर सुदूरवर्ती दक्षिण तक भ्रमण कर, भारतीय संस्कृति का प्रसार किया। बंगाल, बिहार, राजस्थान, महाराष्ट्र और पंजाब में अनेकों अवसरों पर विभिन्न सम्मेलनों में अध्यक्ष बनाये गये। हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी और अंग्रेजी भाषा पर आपका समान रूप

Scanned by CamScanner

से अधिकार था।

आपकी महती सेवाओं के लिए दीक्षा शताब्दी समारोह, मथुरा में 25 दिसम्बर, 1959 को राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी के कर-कमलों द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया।

आपके दार्शनिक ग्रन्थों में **आस्तिकवाद, अद्वैत, जीवात्मा, Philosophy of Dayanand, Vedic Culture, Worship, Reason & Religion, Superstition, वारी ताला (उर्दू)** मुख्य हैं।

शांकर-भाष्यालोचन, सायण और दयानन्द, राममोहनराय-केशवचन्द्र-दयानन्द, शंकर-रामानुज-दयानन्द, कम्यूनिज्म, सर्वदर्शन संग्रह, धम्मपद आपके तुलनात्मक ग्रन्थ हैं। **सत्यार्थ प्रकाश** का अंग्रेजी अनुवाद **Light of Truth** नाम से किया है। मनुस्मृति, ऐतरेय ब्राह्मण, शत्पथ ब्राह्मण, मीमांसा दर्शन के हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किये हैं। **इस्लाम के दीपक, आर्यसमाज और इस्लाम** प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। **आर्योदय (दो भाग)** संस्कृत में काव्य है। **'कौसे कजा'** उर्दू कविता संग्रह।

आपने 100 से अधिक ट्रैक्ट और 100 के लगभग उच्चकोटि के ग्रन्थों की रचना की है। जीवन के अन्तिम क्षण तक आपकी लेखनी तीव्रता से चलती रही। 02 अगस्त 1968 को 87 वर्ष की आयु में आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान व प्रखर लेखक पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय जी का प्रयाग में देहावसान हुआ।

♦♦♦

वैदिक सिद्धान्त विमर्श

विषय सूची

अध्याय		पृष्ठ
1. धर्म क्या वस्तु है?	.....	09
2. वेद क्या है?	.....	16
3. ईश्वर	.....	41

□□□

अध्याय–1

धर्म क्या वस्तु है?

धर्म संस्कृत भाषा का शब्द है, यह 'धृ' धातु से बनता है। 'धृ' का अर्थ है धारण करना या जो किसी वस्तु के अस्तित्व को धारण करे वह धर्म है।

धर्म के पारिभाषिक अर्थ कई हैं जैसे-

(1) गुण-अग्नि का धर्म है उष्णता या प्रकाश

(2) मुख्य कार्य-अग्नि का धर्म है जलाना।

(3) कर्त्तव्य-मनुष्य का धर्म है सत्य बोलना।

(मनु के बताये धर्म के 10 लक्षण)

(4) दान-राज्यों के उस अध्यक्ष को जो दान खाते की देख भाल करता है धर्माध्यक्ष कहते हैं।

धर्मखाता=दानखाता, धर्मशाला वह स्थान जहाँ यात्री बिना किराये के 'दान' के रूप में ठहर सकें।

(5) कोई घटना जो अवश्यम्भावी हो, जैसे स्त्रियों का मासिक धर्म (रजोदर्शन)।

(6) ईश्वर और मनुष्य के परस्पर सम्बन्धी विचार जिसमें ईश्वरोपासना सम्मिलित हैं, जिसको अंगरेजी में रिलीजन (Religion) और अरबी में 'मज़हब' कहते हैं।

(7) कर्तव्य की कसौटी-श्रुति, स्मृति, सदाचार और "स्वस्यच प्रियमात्मन:" ये चार कर्त्तव्य की कसौटियाँ हैं।

प्रश्न- यहाँ आपने धर्म के अनेक अर्थ बता दिये। इससे यह समझ में नहीं आता कि धर्म या मजहब किसे कहते हैं, इसका प्रयोग तो हम संसार में बहुतायत से पाते हैं।

उत्तर- मनुष्य का किसी मनुष्येतर और मनुष्योत्तर शक्ति के अस्तित्व पर विश्वास और उस विश्वास के आधार पर जो आचरण किये जाते हैं उन सबका धम्र में समावेश है, जैसे लोगों का विश्वास है कि संसार में कोई ऐसी शक्ति है जो मनुष्य से भिन्न हैं और मनुष्य से अधिक उत्कृष्ट है। हम इसको ईश्वर, गॉड, अल्लाह आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। इस ईश्वर-विश्वास के आधार

Scanned by CamScanner

पर पूजा, पाठ, दान आदि की भिन्न- भिन्न व्यवस्थायें हैं। उन सबको धर्म कहते हैं।

प्रश्न- धर्म और मजहब में क्या भेद है। यह दोनों एक हैं या भिन्न-भिन्न। यदि भिन्न हैं तो उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है?

उत्तर- इन शब्दों की उत्पत्तियाँ तो भिन्न हैं और हम ऊपर बता चुके हैं कि धर्म शब्द संस्कृत साहित्य में किस-किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। परन्तु हिन्दी भाषा में साधारणतया मजहब और धर्म का एक ही अर्थ में प्रयोग होता है। जैसे मुसलमानी मजहब या धर्म, ईसाई धर्म, बौद्धधर्म इत्यादि।

प्रश्न- इस पुस्तक में जो अपने "वैदिक धर्म" शब्द का प्रयोग किया है यहाँ 'धर्म' का आप क्या अर्थ लेते हैं।

उत्तर- यहाँ हमने 'धर्म' को साधारण जनता की मान्यता के अनुसार 'मजहब' का समानार्थक माना है। इस अर्थ में संसार में आजकल बीसियों धर्म या मजहब प्रचलित हैं। अर्थात् ईश्वर के विषय में लोगों के विचार भिन्न-भिन्न हैं और पारलौकिक कामनाओं में मतभेद हैं। यहाँ हम बताना चाहते हैं कि-

(1) वेदों के अनुसार ईश्वर का क्या स्वरूप है?

(2) जगत् के विषय में वेदों का क्या दृष्टिकोण है?

(3) वेदों के अनुसार मनुष्यों का अपने प्रति, मनुष्य मात्र के प्रति और अन्य प्राणियों के प्रति क्या कर्त्तव्य है।

(4) वेदों के अनुसार परलोक क्या है और पारलौकिक समृद्धि के लिये हम इस लोक में क्या कर सकते हैं?

(5) वेदों के अनुसार पाप क्या है और पुण्य क्या है?

(6) वेदों के अनुसार मनुष्य को किस वस्तु की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) करनी चाहिये? किस वस्तु की लिप्सा (पाने की इच्छा) करनी चाहिये? किस वस्तु की चिकीर्षा (काम करने की इच्छा) करनी चाहिये? किस वस्तु की जिज्ञासा (छोड़ने की इच्छा) करनी चाहिये। वेदों में मनुष्य के समस्त जीवन क्षेत्र का अध्ययन है।

प्रश्न- वैदिक धर्म और अन्य धर्म में क्या भेद है?

उत्तर- सब धर्मों में परस्पर कुछ समानता है और कुछ भिन्नता। न सब धर्म एक है और न सब धर्म एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है?

प्रश्न- क्या सब धर्मों में मौलिक अभेद है?

उत्तर- मौलिक क्या है और गौण क्या है, इसके विषय में भी भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं। लोगों का ज्ञान, उनकी प्रवृत्तियाँ, उनकी इच्छायें भिन्न-भिन्न हैं। उसके अनुसार धर्मों में भी भिन्नतायें हैं। कुछ भेद मौलिक भी हैं और कुछ गौण भी। अत: यह कहना भारी भूल है कि सब धर्म मूल में समान है। धर्म के तीन मुख्य क्षेत्र हैं :- (1) दार्शनिक विचार या दृष्टिकोण-सब जानते हैं कि भिन्न-भिन्न धर्मों के दार्शनिक विचार भिन्न-भिन्न हैं। एक नहीं (2) आचार सम्बन्धी कर्त्तव्याकर्त्तव्य। जैसे-सच बोलना, चोरी न करना इत्यादि। इस क्षेत्र में भिन्न-भिन्न धर्मों में अधिक समानता है। परन्तु इन बातों में भी कहीं-कहीं भेद है। (3) पूजा पाठ की विधियाँ इनमें तो भिन्न-भिन्न धर्म स्पष्टतया भिन्न हैं। रस्मो-रिवाज भी इसी के अन्तर्गत हैं।

प्रश्न- रस्मोरिवाज तो गौण हैं, उनका मूल तो एक ही है।

उत्तर- ऐसा नहीं है। मूल भी भिन्न हैं और शाखायें भी भिन्न है? शाखाभेद प्राय: मूलभेद के कारण है।

प्रश्न- फिर बड़े-बड़े लोग क्यों कहते हैं कि सब धर्मों का मूल एक है?

उत्तर- आप 'बड़ा' किसकों कहते हैं? धर्मों के संस्थापक सब बड़े लोग थे। उनका यह कदापि कथन न था कि सब धर्म मूल में एक हैं। गौतम बुद्ध और शंकराचार्य के एक मत नहीं। न मुहम्मद और लूथर के। धार्मिक मौलिक समानता की दुन्दुभि वे लोग बजाते हैं जो धर्मों की विवेचना नहीं करना चाहते और केवल लीपापोती करके धार्मिक झगड़ों को दूर करना चाहते हैं।

प्रश्न- क्या आप ऐसे लोगों को 'बड़ा' नहीं कहेगे? इससे तो मनुष्य का बड़ा उपकार होता है। लोग धर्म के झगड़ों में परस्पर एक दूसरे के सिर क्यों फोड़े? अगर धर्म का पचड़ा न होता तो जातियों और देशों में मतमतान्तर के युद्ध न होते और लोग शान्ति से रहते। यही बुराई देखकर तो कार्ल मार्क्स ने कहा था कि धर्म एक अफीम है जिनके नशे में मनुष्य पागल हो गया है।

उत्तर- हम इस बात को स्वीकार नहीं करते। जब तक मनुष्यों में अज्ञान और स्वार्थ रहेगा वे आपस में लड़ेंगे। कभी ईश्वर के बहाने से, कभी देश हित के बहाने से, कभी व्यापार और सभ्यता के बहाने से। केवल एक ईश्वर या धर्म को तिलांजलि देने से कभी मनुष्यों में युद्ध और वैमनस्य की प्रवृत्ति छट नहीं सकती। जहाँ धर्म मन्दिरों का प्रश्न नहीं, वहाँ रहने के घरों पर लड़ाइयाँ होती

Scanned by CamScanner

हैं। जहाँ पूजा पाठ का प्रश्न नहीं, वहाँ रोटी ही युद्ध का कारण बन जाती है।

प्रश्न- क्या धर्म और परलोक के झगड़ों से बचकर मनुष्यों में शान्ति, प्रेम और भ्रातृभाव का संचार न होगा?

उत्तर- हमारा विचार ऐसा नहीं। आप किसी कचहरी में चले जाइये। और मुकद्दमा लड़ने वालों की सूची उठाकर देखिये। धर्म या धर्म मन्दिर विषयक अभियोग एक प्रतिशतक भी न मिलेंगे, खेत, सम्पत्ति आदि के ही झगड़े अधिक हैं। रोटी लड़ाई की जड़ है। परन्तु रोटी को आप छोड़ नहीं सकते।

प्रश्न- क्या मनुष्य जाति के उद्धार का कोई साधन है?

उत्तर-एक है। अर्थात धार्मिक प्रश्नों पर यथेष्ठ विवेचना की जाय और सत्य को खोजने और उसके ग्रहण करने में सर्वदा उद्यत रहा जाये और असत्य को छोड़ने का प्रयत्न किया जाय।

प्रश्न- यह तो बड़ा कठिन मार्ग है?

उत्तर- कठिन अवश्य है। परन्तु दूसरा कोई मार्ग नहीं। ऊँची मन्जिल पर पहुँचने के लिये अवश्य ही कठिन चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। क्या संसार में कोई काम बिना विवेक के भी हो सकता है? ठीक और गलत मार्गों में विवेक करना और गलत को छोड़कर ठीक मार्ग का अवलम्बन करना तो साधारण मात्रा में भी आवश्यक होता है। इसलिये ज्ञान पूर्वक विवेक करने से ही काम चलेगा। यदि आप जीवन के साधारण सुखों अर्थात् रोटी, वस्त्र, धार आदि से सन्तुष्ट होकर जीवन की सूक्ष्म समस्याओं को छोड़ भी दें तो क्या मानव जाति के लिये इन प्रश्नों को छोड़ना सम्भव है।

जंगली जातियाँ भी पेट भरने के पश्चात् सोचने लगती हैं कि हम क्या हैं? संसार क्या है? मनुष्य संसार में क्यों जन्म लेता और क्यों मर जाता है? मरने के पीछे क्या होता है? इन प्रश्नों से आप बच तो सकते नहीं, इनका समाधान करने में ही छुटकारा है।

प्रश्न- धार्मिक प्रश्नों के समाधान में ज्ञान और विज्ञान की क्या आवश्यकता है? किसी गुरू को पकड़ लें और उसके उपदेशों पर विश्वास करें। धर्म ज्ञान का विषय नहीं श्रद्धा और विश्वास का विषय है। ज्ञान की तो कोई पराकाष्ठा नहीं। जितना ज्ञान प्राप्त करते जाओ उतना ही अपने अज्ञान का अधिक अनुभव होने लगता है। ज्ञान के अपार सागर को तैरना असम्भव है।

उत्तर- ठीक है कि ज्ञान का सागर अपार है। परन्तु अज्ञानी होने से भी तो

काम नहीं चलता। आँख खोलेंगे तो बहुत दूर की चीजें दिखाई देंगी इस डर से आप मार्ग में आँखें तो नहीं मींच लेते। और न आंखें बन्द करने से हमारा गुजारा है। रोटी कमाने के लिये भी ज्ञान चाहिये। और रोटी की रक्षा के लिये भी ज्ञान चाहिये। पहले जानने की कोशिश कीजिये फिर उस पर विश्वास कीजिये। अन्य विश्वास तो आप को गढ़े में डाल देगा। यदि आप में विवेक नहीं तो सैकड़ों ठग आपको गुरु के रूप में मिलेंगे और आपका जीवन नष्ट कर देंगे। आज कल जो अनेक मत मतान्तर और सम्प्रदाय धर्म के नाम पर प्रचलित हैं उनमें से बहुत से तो स्वार्थ ठगों की ठग विद्या का प्रपन्च हैं। वह मूर्ख लोगों को सुझाते फिरते हैं कि ज्ञान तो अपार है। श्रद्धा, विश्वास और भक्ति के मार्ग को पकड़ो। उन्होंने मनमानी भावनायें और कपोल कल्पित धारणायें बना रक्खी हैं। वह मनुष्य को मनुष्य अर्थात मननशील और ज्ञानी नहीं बनने देते। वे उनको भेड़ बनाकर अपने पीछे लगाना चाहते हैं।

प्रश्न- इस विषय में वेद क्या कहता है?

उत्तर- वेद में तो स्पष्ट कहा है कि-

दृष्ट्वारूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धाꣳ सत्येप्रजापतिः॥

(यजुर्वेद- 11/77)

ईश्वर ने सर्वज्ञता के फलस्वरूप सत्य और असत्य में स्पष्ट भेद कर दिया है और मनुष्य को आज्ञा दी है कि ज्ञान प्राप्त करके सत्य में श्रद्धा करो और असत्य में अश्रद्धा करो। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जो चीज! उसको प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों द्वारा सच जंचती है उसको मानने के लिये बाध्य हो जाता है। वही मनुष्य झूठी बातों पर विश्वास कर लेता है जो आलस्य और प्रमाद के कारण सत्य की खोज नहीं कर पाता। ठग लोग ज्ञान और विवेक की अवहेलना करके अन्धविश्वास पर इसलिये बल देते हैं कि मूर्ख लोग उके वश में रहें। उनमें तर्क बुद्धि का विकास हो गया तो वे उनके पंजे से निकल भागेंगे। वेद में बुद्धि और ज्ञान के लिये अनेक प्रार्थनायें हैं जैसे :-

(1) **धियो यो नः प्रयोदयात्।**

हे ईश्वर हमारी बुद्धियों को प्रेरित करो।

(यजुर्वेद 3/35)

(2) **चोदयधियं अयसो न धाराम्।**

Scanned by CamScanner

हे ईश्वर हमारी बुद्धि तलवार जैसी पैनी हो।

(ऋग्वेद- 6/47/10)

(3) **तया मामद्यमेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु।**

हे ईश्वर आप मुझे मेधावी बुद्धि दें।

(यजुर्वेद 32/14)

वस्तुत: मनुष्य के पास बुद्धि से अच्छी कोई वस्तु नहीं। आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियाँ तो बुद्धि की सहायता के लिये ही उसकी अनुचर रूप हैं। अत: मनुष्य की बुद्धि का निवास करके सत्य और असत्य का निर्णय करना चाहिये। मनुष्य का मनुष्यत्व तभी सार्थक हो सकता है।

प्रश्न- धर्म एक है या अनेक?

उत्तर- सच्चाई एक ही है। अत: धर्म भी एक ही होना चाहिये। परन्तु अंधेरे में या रोगी आँख को चीजें कुछ की कुछ दृष्टि पड़ती हैं। इस प्रकार बुद्धिहीन या कम बुद्धि वाले मनुष्य भ्रम में पड़कर कुछ का कुछ समझने लगते है। धर्मों की भिन्नता का यही कारण है।

प्रश्न- रुचियाँ भिन्न होने से धर्म भी भिन्न-भिन्न होने चाहिये?

उत्तर-यह ठीक है कि मनुष्यों की रुचियाँ भिन्न-भिन्न हैं और वह अपने आचार और व्यवहार को भी भिन्न-भिन्न रखना चाहते हैं। परन्तु रुचियों की भिन्नता तो अज्ञान और संस्कारों के कारण है। सभी रुचियाँ हितकर या कल्याणकारी नहीं होतीं। इसलिये रुचियों के पीछे चलना भारी भूल है। यदि डॉक्टर रोगी को अपनी रुचि पर छोड़ दे, तो रोगी शीघ्र परलोक चला जायगा। इसलिये यह देखना पड़ेगा कि कौन रुचि उचित है और कौन अनुचित।

प्रश्न- जैसे वृत्त (Circle) परिधि (Circumferance) के प्रत्येक बिन्दु से केन्द्र की दूरी बराबर होती है उसी प्रकार सब धर्म अपने भिन्न-भिन्न मार्गों से ईश्वर तक पहुँचते हैं। अत: सब धर्म एक से हैं।

उत्तर- यह उपमा गलत और विशम है। जब तक नापकर यह सिद्ध न हो जाये कि प्रत्येक बिन्दु केन्द्र से बराबर दूरी पर है उस समय तक यह नहीं कहा जा सकता कि वे बिन्दु परिधि के ही बिन्दु हैं। पहले परकार से नाप लो कि सब बिन्दु बराबर दूरी पर हैं फिर उनको परिधि के बिन्दु कहो। क्योंकि सैकड़ों बिन्दु होंगे जो परिध पर नहीं हैं और उनकी केन्द्र से दूरी भी समान नहीं है।

Scanned by CamScanner

भिन्न-भिन्न धर्मों में कर्त्तव्य अकर्त्तव्य के दृष्टिकोण भी भिन्न हैं और कार्यों में भी भेद है। यह सब बराबर कल्याणकारी नहीं हो सकते।

प्रश्न- क्या सब धर्म झूठे हैं? केवल आपका धर्म ही सच्चा है।

उत्तर- इसका निर्णय तो बुद्धि ही करेगी। सब धर्मो की सभी बातें झूठी नहीं। सत्य और असत्य के अनुपात में भेद होता है परन्तु यह कहना सर्वथा गलत है कि सब धर्मों में सचाई की मात्रा बराबर है। कोई एक बात में गलती कर सकता है कोई दूसरी में। यही कारण है कि हर धर्म को अपने उद्देश्य की पूर्ति में असफलता रहती है। जितनी जिसमें सचाई अधिक होगी, उतनी ही उसको सफलता होगी।

प्रश्न- सचाई का पता कैसे चले?

उत्तर- इन्द्रियों से देखिये। मन से सोचिये, पुराने लोगों के उपदेशों और अनुभवों से तर्क और युक्ति को काम में लाते हुये बिना अन्धविश्वास के लाभ उठाइये। जिनको बुद्धि स्वीकार न करे उसे छोड़ने को उद्यत रहिये।

प्रश्न- हमारी बुद्धि तो अल्प है, इस पर कैसे विश्वास किया जाये?

उत्तर- बुद्धि तो सभी मनुष्यों की अल्प है। परन्तु बुद्धि के सिवाय आपके पास है भी क्या, जिससे सच और झूठ पहचाना जा सके। जितना आप बुद्धि का प्रयोग करेंगे उतना आपकी बुद्धि का विकास होगा और उतना ही आप सच-झूठ पहचान सकेंगे। बुद्धि की अवहेलना न कीजिये। इसे काम में लाइये और अन्धविश्वास से बचिये। यही धर्म है। यही धर्म के जानने का मार्ग है।

प्रश्न- फिर वेदों की क्या आवश्यकता? "वैदिक धर्म'' के स्थान में आप "बुद्धि धर्म" क्यों नहीं कहते?

उत्तर- बुद्धि धर्म और वैदिक धर्म एक ही बात है। वेद बुद्धि को ही प्रेरणा कहते हैं। जैसे आँख के विकास और आँख से लाभ उठाने के लिये सूर्य्य की सहायता चाहिये, इसी प्रकार बुद्धि के विकास और यथार्थ उपयोग के लिये वेद की आवश्यकता है। यदि आपको वेदों में कोई बुद्धि-विरुद्ध बात मिले तो आप उसे त्याग दीजिये परन्तु बुद्धि को काम में तो लाइये।

प्रश्न- तो क्या हम अपने बाप-दादों के धर्म को छोड़ दें?

उत्तर- झूठ को छोड़िये। सच को नहीं। 'झूठ' किसी के बाप-दादों का धर्म नहीं हो सकता।

अध्याय–2

वेद क्या है?

वेद अत्यन्त प्राचीन धर्म पुस्तकें हैं। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।

प्रश्न- वेद कितने पुराने हैं?

उत्तर- यजुर्वेद अध्याय 31 का 7वां मन्त्र यह है :-

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि, जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥

उस सर्वपूज्य यज्ञरूपी परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और छन्द अर्थात् अथर्ववेद प्रकट हुए। इसका तात्पर्य यह है कि वेदों का आविर्भाव सृष्टि से आरम्भ में ईश्वर से हुआ।

प्रश्न- यह कैसे माना जाय कि वेद सब से प्राचीन हैं?

उत्तर- जब तक वेदों से प्राचीन कोई पुस्तक न पाई जाये तब तक वेदों का प्राचीनतम मानना सिद्ध ही है।

प्रश्न- क्या अन्य धर्मों की पुस्तकें वेदों से पुरानी नहीं?

उत्तर- पता तो नहीं चलता। इस्लाम धर्म की धर्म पुस्तक कुरान है, इसमें ईसाई धर्म की पुस्तक बाइबिल का उल्लेख है, बाइबिल में यहूदियों के धर्म पुस्तक तौरेत का उल्लेख है। तौरेत में पारसियों की धर्म पुस्तक जिन्द अवस्था का उल्लेख है, जिन्द अवस्था में वेदों के अथर्वा, अंगिरों आदि का उल्लेख है, अतः वेद सबसे प्राचीन हुये। 'प्राचीनतम' तो उसी को कहते हैं जिससे पुरानी अन्य वस्तु दिखाई न पड़े। सूर्य्य सबसे पुराना है क्योकि इससे पुराना सूर्य्य दृष्टि नहीं पड़ता। इसी प्रकार वेद को भी समझना चाहिये।

प्रश्न- वेद का आविर्भाव आप ईश्वर से क्यों मानते हैं?

उत्तर- प्राचीनतम और मौलिक सभी वस्तुएं ईश्वर कृत मानी जाती हैं। आप किसी चीज को उठा लीजिये और उसकी मौलिक अवस्था तक पहुँचने का यत्न कीजिये। आपको मानना पड़ेगा कि जो आरम्भिक अवस्था है उसका अविर्भाव ईश्वर से ही हुआ होगा, क्योंकि उसके बनाने वाला कोई पुरुष दृष्ट नहीं पड़ता, इसीलिये वेद को स्मृतिकारों ने "अपौरुषेय" कहा है। समस्त दीपक पौरुषेय अर्थात् पुरुष-कृत हैं। सूर्य्य अपौरुषेय है। अतः ईश्वर-कृत है। सन्दूक, मेज, कुर्सी आदि पौरुषेय है। उनका मूल "वृक्ष" अपौरुषेय है। गिलास, कटोरा, कुआँ आदि जल-पात्र या जलाशय पौरुषेय या मनुष्यकृत हैं। 'समुद्र' अपौरुषेय या ईश्वर-कृत

हैं। कंगन, हार आदि आभूषण पौरुषेय हैं। 'सोना' भी इन सब आभूषणों का मूल है। अपौरुषेय अर्थात् ईश्वर-कृत है। इसीलिये तो वेदों में स्वयं यह साक्षी मिलती है कि 'यज्ञ' अर्थात परमात्मा की ओर से वेदों का आविर्भाव हुआ।

प्रश्न- क्या मन्त्र का यह अर्थ नहीं कि यज्ञ करते हुये ऋषियों को वेद का ज्ञान हुआ?

उत्तर- इससे भी अन्त को ईश्वर ही वेदों का देने वाला सिद्ध हुआ। परन्तु 'यज्ञ' तो वेदों की शिक्षा का फल है। इसलिये यहाँ 'यज्ञ' का अर्थ ईश्वर ही है।

प्रश्न- क्या आप वेद में यह लिखा दिखा सकते हैं कि वेद ईश्वरकृत हैं?

उत्तर- अवश्य!

वसो रिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिगृणान्त ऋग्मियम्।
हो गन्तारमूतये॥ **(ऋग्वेद 1/9/9)**

यहां इन्द्र अर्थात ईश्वर को "ऋग्मियं" कहा है। इसका अर्थ है ऋचांग्मातार (ऋचाओं का निर्माता) (ऋचोमिमीते इति ऋग्मी सायण)।

प्रश्न- वेद संस्कृत भाषा में क्यों है?

उत्तर- वेद संस्कृत भाषा में नहीं, वेद की भाषा को तो आप वाक्, वाणी, अर्थात 'भाषा' कह सकते हैं। जो चाहे तो उसको वैदिक भाषा कहिये। वेदों को पढ़कर ऋषियों ने जो भाषा निकाली उसका नाम संस्कृत पड़ा। इस प्रकार संस्कृत भाषा संसार की सभी भाषाओं की अपेक्षा वेद की भाषा के निकटतम है। अन्य भाषायें संस्कृत भाषा से निलने के कारण शनैः-शनैः वेदों से दूर होती गई हैं। इसीलिये वेद पढ़ने के लिये आरम्भ में संस्कृत पड़ना आवश्यक होता है।

प्रश्न- क्या वेद की भाषा और संस्कृत में भेद है?

उत्तर- अवश्य है, परन्तु थोड़ा, जिस प्रकार गंगोत्तरी के समीप जो जल है वही गंगा की नहर में भी है, परन्तु गंगोत्तरी का जल शुद्ध और निर्मल है। नहर के जल में बहुत सी अशुद्धियाँ भी मिल गई हैं। इसी प्रकार जब वेद की भाषा को लोगों ने दैनिक प्रयोग में लाना आम्भ किया तो शनैः-शनैः परिवर्तन होते गये। कालान्तर में यह परिवर्तन इतने बढ़ गये कि समानता आंखों से तिरोहित हो गई।

प्रश्न- इन परिवर्तनों को उदाहरण देकर समझाइये।

उत्तर- व्यावहारिक प्रयोग में आने से शब्दों में दो मुख्य विकार हो जाते हैं। एक रूप-विकार और दूसरा अर्थ विकार।

प्रश्न- रूप विकार किसे कहते हैं-और वह क्यों होता है?

उत्तर- रूप विकास का मुख्य कारण ध्वनि भेद है। प्रत्येक शब्द के

Scanned by CamScanner

उच्चारण के लिये विशेष स्थान और विशेष प्रयत्न चाहिये। स्थान का अर्थ है मुख का वह भाग, जिससे बोलते हैं, जैसे अ, क, घ आदि कण्ठ से बोले जाते हैं, प, फ, ब आदि होंठ से, व दांत और होंठ से 'स' दांत से, 'श' तालु से, ष मूर्धा से, अब यदि बोलने वाला असावधानी, अज्ञान, जल्दी या शारीरिक दोष के कारण किसी अक्षर को अनुचित स्थान से बोलने लगे और उसका अनुकरण लोग करने लगें, तो अन्ततोगत्वा वह विकृत हो जायेगा। जैसे संस्कृत का शब्द है "वर्ष" 'व' दन्तोष है, 'ष' मूर्धन्य हैं। बोलने वाले ने दन्तोष के स्थान में होंठ से ही काम लिया तो 'व' का 'ब' हो गया। और मूर्धन्य के स्थान पर दाँत से काम लिया तो ष का स हो गया। इस प्रकार शुद्ध शब्द "वर्ष" का विकृत 'वरस' हो गया। विकार का ढंग देखना हो तो आप छोटे बच्चों की तुतली बोली पर विचार कीजिये। बच्चे माता-पिता से (रोटी) शब्द सुनते हैं। उनकी जीभ अभी विकसित नहीं हुई। इसलिये कोई तो 'लोटी कहते हैं। अर्थात 'र' के स्थान में 'ल' कहा। कोई 'ओटी' कहता है। अर्थात् व्यंजन को बोलने की क्षमता न होने के कारण केवल 'स्वर' से काम लेता है। मैने एक बच्चे को 'टीटी' कहते भी सुना है। केवल पीछे के अक्षर को जो अधिक स्पष्ट था दुहरा दिया। इस प्रकार शुद्ध शब्द पहले कुछ कम अशुद्ध हुआ फिर उसी अशुद्ध शब्द को समझने लगे और पीछे से उसको और अधिक विकृत कर लिया गया। वैदिक भाषा का शुद्ध शब्द था 'यज्ञ'। ज्ञ=ज+ञ के। अत: यज्ञ का 'यजञ', ऐसा बोलना चाहिये, परन्तु भूल से उसको 'यग्य' कहने लगे। 'यग्य' यज्ञ का विकृत है। परन्तु उस विकृत यग्य को और बिगाड़कर किसी ने 'जग्य' कहा। इसी प्रकार 'वायु' का 'बायु', 'बाय', 'वाई' हो गया। 'गौ' का 'गाय', 'गाव' 'गियो' 'जियो', 'कौ' 'काऊ' हो गयी। कभी किसी शब्द का एक भाग छट जाता है। कभी आरम्भ का, कभी अन्त का और कभी बीच का। कभी कुछ मिल जाता है। कभी कुछ बदल जाता है। इसी प्रकार अपचय (घटना), उपचय (बढ़ना) और आदेश (बदलना) इन तीन प्रथाओं के लाखों बार दुहराते दुहराते भाषाओं में वर्तमान अन्तर हो गया है। हिन्दू में जिस पशु को 'ऊँट' कहते हैं, उसी को फारसी में शुतर कहते हैं। ऊँट और शुतर में इतना भेद है कि कोई ऊपरी दृष्टि वाला यह नहीं कहेगा कि यह दो शब्द एक ही वंश के हैं परन्तु विचारिये। संस्कृत का शब्द था 'उष्ट्र' बीच का मूर्धन्य 'ष' क्लिष्ट होने के कारण छूट गया। अत: हिन्दी में 'ऊँट' और तिलगु में 'उँटे' हो गया। परन्तु दूसरे लोगों ने 'उष्ट्र' का पहला 'स्वर' छोड़ दिया। और मूर्धन्य 'ष' का तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ट' को 'त' कह दिया। अत: वह उसको 'शुतर' कहने लगे। यह दो भिन्न परिवर्तन दो भिन्न मार्गों से हुये। संस्कृत

शब्द का 'वत्स'। 'व' का 'ब' होकर वत्स, फिर बच्छ, बछड़ा, बछिया, बछेड़ा, बच्चा, बच्ची, बच्चू अनेक रूप हो गये।

प्रश्न- अर्थ विकार किसे कहते हैं। और कैसे होता है?

उत्तर- आरम्भ में किसी शब्द के अर्थ उसकी व्युत्पत्ति के कारण होते हैं। पीछे से उन अर्थों में अलंकार इच्छा, आवश्यकता अज्ञान आदि के कारण संकोचन प्रमाण अथवा अर्थ परिवर्तन हो जाता है। जैसे-वैदिक शब्द 'पति' का अर्थ है 'रक्षक'। प्रत्येक व्यक्ति को जो रक्षा करे पति कह सकते हैं। परन्तु व्यवहार में उस पुरुष को पति कहते हैं जिसका किसी स्त्री के साथ विवाह होता है। ईश्वर भी विश्व-पति या प्रजापति या जगत्पति है। राजा को अधिपति, देशपति, आदि कह सकते हैं। इस प्रकार पति, शब्द के विस्कृत अर्थ छोड़कर संकुचित अर्थ हो गये। 'मुख' शरीर का ऊपरी अंग है। परन्तु 'मुख' या 'प्रमुख' 'नेता' के अर्थ में 'प्रसारित' भी हो जाता है। 'देव' या 'देवता' शब्द का मौलिक अर्थ है चमकने वाला। जैसे-सूर्य, अग्नि, विद्वान् या ईश्वर। परन्तु अज्ञान वश मूर्ति को भी देव या देवता पुकारने लगे। फारसी आदि भाषाओं में मूर्तिपूजा की अवहेलना करने के लिये 'देव' का अर्थ राक्षस, ईश्वर-द्रोही आदि भी हो गया। कभी-कभी अर्थ व्यत्यय भी होता है, जैसे 'बुद्ध' शब्द का अर्थ है। 'जागा हुआ' या 'समझदार'। बौद्ध धर्म में गौतम का नाम 'बुद्ध' पड़ गया। फिर जब बौद्ध धर्म ईरान आदि देशों में फैला और वहां बुद्ध की मूर्तियाँ स्थापित हुई तो मूर्ति मात्र को बुद्ध, बुध या बुत कहने लगे। अब फारसी में किसी की जड़ मूर्ति को 'बुत' कहते हैं। यहां 'बुत' का मौलिक अर्थ सर्वथा नष्ट होकर कुछ का कुछ हो गया। संस्कृत का अस्मि शब्द उत्तम पुरुष का एक वचन है। जैसे 'हरिदत्तोऽस्मि' "मैं हरि दत्त हूँ"। यहां 'अस्मि' का अर्थ है 'हूँ'। इसको दूसरे रूप में कहेंगे "मेरा नाम हरि दत्त है।" अत: कालान्तर में 'अस्मि' का अर्थ हो गया। 'नाम' और अस्मि बिगड़ कर अरबी का 'इस्म' बन गया। वैदिक शब्द था "ईड्य"। इसको वैदिक लोग दो प्रकार से बोलने लगे। 'ईड्य' या 'ईक्तय'। कालान्तर में यह इल या 'ईल' हो गया। इब्रानी भाषा का 'ईल' और संस्कृत भाषा का 'ईल्य' समानार्थक है। अर्थात् पूजनीय, ईल्य वेदों में बहुत आया है। अरबी में 'इल;' शब्द 'पूजनीय' अर्थात् 'देवता' का वाचक है, अरबी भाषा में 'इल:' का स्त्री लिंग 'लात' बनाया। दूसरा अर्थ है 'देवी'। अरबी का 'अल' उपसर्ग (**Definite Article**) 'इल:' में लगा तो 'अल्ला:' शब्द बन गया। मुसलमान लोग ईश्वर को 'अल्ला:' कहते हैं, 'अल्ला:' का अर्थ हुआ 'विशेष पूजनीय' या वरिष्ठ और श्रेष्ठ। इस प्रकार यदि संसार की समस्त प्रचलित और लुप्त भाषाओं के विकास

Scanned by CamScanner

और प्रचार का क्रमिक इतिहास उपलब्ध हो जाये तो हम जान सकेंगे कि वेद की भाषा किन-किन अवस्थाओं या परिवर्तनों को पार करके उन भाषाओं के रूप में बदल गई। इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर प्रसांगानुसार हम इसको विस्पष्ट करेंगे।

प्रश्न- वेद शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर- वेद को संस्कृत नैदानों (Etymologists) ने पाँच धातुओं से सिद्ध किया है :-

(1) अदादि (द्वितीय) गण के परस्मैपदीय विद् धातु से जिसका अर्थ है जानना, सीखना या समझाना। इसके रूप इस प्रकार चलते हैं वेत्ति, वित्तः, विदन्ति या वेद, विदतुः, विदुः।

(2) दिवादि (चतुर्थ) गण के आत्मनेपदीय 'विद्' धातु से जिसका अर्थ है 'सत्ता', 'होना'। इसके रूप इस प्रकार चलते हैं, विद्यते, विद्येत, विद्यन्ते।

(3) तुदादि (षष्ठ) गण के उभय पदीय 'विद्' धातु से जिसका अर्थ है 'लाभ' (प्राप्ति) इसके रूप :- विंदति, विंदते।

(4) रुधादि (सप्तम) गण के आत्मनेपदीय 'विद्' धातु से जिसका अर्थ है 'जानना'। इसके रूप :- विन्ते, विन्दाते, विन्दते।

(5) चुरादि (दशम) गण के आत्मनेपदीय 'वद्' से जिसका अर्थ है 'कहना' या 'घोषित' करना। इसके रूप :- वेदयते, वेदयेते, वेदयन्ते।

धातु तो एक ही है अर्थात् 'विद्'। इसके अर्थ और रूप भिन्न-भिन्न हैं। 'वेद' शब्द इन सब से सिद्ध हो जाता है। (विद् धातु के 'अच्' या 'घञ्' प्रत्यय लगाने से)। संस्कृत के दो श्लोकों में विद् के सभी अर्थों का समावेश किया है :-

वेत्ति सर्वाणि शास्त्राणि गर्वस्तस्य न विद्यते।

विंत्ते धर्म सदा सद्भिस्तेषु पूजां च विंदति॥

या

सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।

विंदते विंदति प्राप्तौ श्यन्लुक् श्नमशेष्विदं क्रमात्॥

इस प्रकार वेद का पारिभाषिक अर्थ है चार वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद जिनसे लोगों को ज्ञान का लाभ होता है।

प्रश्न- क्या चार वेदों के अतिरिक्त अन्य भी वेद हैं?

उत्तर- वास्तविक मूल वेद तो चार ही हैं, इन्हीं का अपौरुषेय कहा है। परन्तु शाखा रूप से कभी-कभी पौरुषेय अर्थात् ऋषियों और विद्वानों के बनाये हुये

ग्रन्थों का नाम भी वेद पड़ गया है। जैसे कहीं-कहीं गंगा की नहर को भी गंगा और नहर के जल को भी गंगाजल कहते हैं। इसी प्रकार धनुर्वेद, गांधर्ववेद, अर्थवेद, आयुर्वेद आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

प्रश्न- ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषदों को भी कुछ लोग 'वेद' मानते हैं?

उत्तर-यह केवल उपचार की भाषा है। वस्तुतः यह अपौरुषेय मूल वेद नहीं अपितु विद्वानों के बनाये ग्रन्थ हैं और कहीं-कहीं सत्कार के लिये, अथवा कहीं परिभाषाओं के रूप में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों को भी वेद कहा है। परन्तु "स्वतः प्रमाण" केवल ऋग्वेदादि वेद ही है। अन्य ग्रन्थ तो 'परतः प्रमाण' ही है।

प्रश्न- 'स्वतः प्रमाण' और परतः प्रमाण का क्या अर्थ है?

उत्तर- वैदिक साहित्य बड़ा विशाल है। आर्य जाति बड़ी प्राचीन और वैभवशालिनी जाति है। भिन्न-भिन्न समय में इसमें बड़े-बड़े विद्वान और लेखक होते रहे हैं और उन्होंने विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। अतः वैदिक साहित्य के दो भाग हैं- (1) मूलवेद जो अपौरुषेय और ईश्वर-कृत माने जाते हैं। इनको 'स्वतः प्रमाण' इसलिये कहते हैं कि इनके सामने किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं। इनको श्रुति भी कहते हैं। क्योंकि आरम्भ में ऋषियों ने सुन-सुन कर ही वेदों का अध्ययन किया था। क्योंकि उस युग में पुस्तकें न थीं। (2) वेदों के आधार पर बनाये हुये अन्य ग्रन्थ। इनको 'परतः प्रमाण' इसलिये कहते हैं कि वेदों के अनुकूल हों तो इनका प्रमाण है। वेद विरुद्ध हों तो प्रमाण नहीं। इनको स्मृति भी कहते हैं। ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, दर्शन आदि सब बेदांग और वेद-उपांग 'स्मृति' में गिने जाते हैं। पुस्तक-रूप होने के पश्चात् मूलवेदों का नाम (संहिता) भी पड़ गया। क्योंकि उनको जोड़कर पुस्तककार किया गया। किसी-किसी ग्रन्थकार ने समस्त वैदिक साहित्य को वृक्ष रूप मानकर संहिता भाग और ब्राह्मण भाग ऐसा नाम दे दिया। परन्तु मूलवेद तो चार ही गिनाये जाते हैं।

प्रश्न- क्या ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं? कात्यायन तथा आपस्तंब ने तो "मन्त्र=ब्राह्मणयोर्वेदनाम धेयं" ऐसा लिखा है।

उत्तर- यदि आप चाहें तो ब्राह्मण आदि वेदानुकूल ग्रन्थों को इसी अर्थ में वेद कह सकते हैं जिस अर्थ में गंगा की नहर को गंगा। कात्यायन या आपस्तम्ब को तो अपने ग्रन्थ के लिये एक संक्षिप्त परिभाषा बनानी थी। इसलिये उन्होंने अपने विशिष्ट ग्रन्थ में मन्त्री और ब्राह्मण को अलग-अलग भिन्न-भिन्न शब्दों में कहने के स्थान में दोनों का वेद नाम रख दिया। जैसे राजकीय विधान में लिखा

Scanned by CamScanner

होता हे कि पुरुष का अर्थ पुरुष और स्त्री दोनों होगा। इसका यह अर्थ नहीं कि पुरुष और स्त्री समानार्थक हैं। केवल विधान के लिये ऐसा है। जैसे-यदि यह नियम हो कि "जो चोरी करेगा उसको कारागार होगा" तो इसका अर्थ यह है कि जो चोरी करेगी या चोरी करेगा"। यहाँ पुलिंग में स्त्रीलिंग का भी समावेश है ऐसा ही समझना चाहिये। यदि मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग की स्वभावत: नैसर्गिक एकता होती तो कात्यायन को यह परिभाषा बनानी न पड़ती। कात्यायन के समय में मन्त्र और ब्राह्मण अलग-अलग माने जाते रहे होंगे और उनको अपने ग्रन्थ में उस विषय का प्रतिपादन करना इष्ठ रहा होगा। जो उनके विचार से वेदों और ब्राह्मणों में समानता रखता है। इसलिये उन्हें यह परिभाषा बनानी पड़ी। ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों के पठन मात्र से ही स्पष्ट हो जाता है कि उनका अधिक भाग वेदों से बहुत पीछे बना है, 'प्रत्यक्ष किं प्रमाणम्' यह बात तो पन्ने पलटते ही विदित होने लगती है। जिन याज्ञवल्क्य आदि ऋषि मुनियों का उनमें उल्लेख है वेद उनसे भी पुराने हैं। इसलिये मूलवेद और शाखा ब्राह्मणों को वेद में शामिल करना स्वयं अपने को और संसार को धोखे में डालना है, इससे शुद्ध वैदिक धर्म के प्रचार में हानि भी होती है। गंगा की नहर के जल में अशुद्धि को देखकर लोग अनुमान करने लगते हैं कि मूल गंगाजल भी ऐसा ही अशुद्ध होगा। वह इस बात का विचार नहीं करते कि इतनी दूर चलकर जो जल आया है उसमें मार्ग में बाहर की अशुद्धि का प्रवेश सम्भव है। इसी प्रकार ब्राह्मण और उपनिषदकाल तो वेदों के काल सब बहुत पीछे का है। अत: देश और काल की भिन्नता के कारण उनमें बहुत सी ऐसी बातें मिल गईं जो प्रारमिक शुद्धि को बिगाड़ सकती थीं।

प्रश्न- क्या वेद में वशिष्ठ, राम, कृष्ण, अत्रि, भृगु आदि ऐतिहासिक या अर्ध-ऐतिहासिक पुरुषों के नाम नहीं हैं?

उत्तर- शब्द तो विद्यमान हैं। उनको कौन निकाल सकता है? परन्तु यह मीमांसनीय विषय है कि वे ऐतिहासिक पुरुषों के नाम हैं। आजकल भी पुरुष, स्त्री के जो नाम रक्खे जाते हैं, उनके कोई न कोई अर्थ अवश्य होते हैं। परन्तु ज्यों ही वह विशेष व्यक्ति के नाम होकर व्यक्ति वाचक संज्ञा हो जाते हैं उस समय ही उनका 'सार्थकत्व' नष्ट या लुप्त हो जाता है। जैसे किसी पुरुष का नाम 'सत्यकाम'। 'सत्यकाम' शब्द का अर्थ है सत्य की कामना करने वाला व्यक्ति। माँ बाप ने अपने पुत्र का नाम 'सत्यकाम' इसलिये रक्खा कि उसका अर्थ शुभ और सुन्दर था। परन्तु जब उस लड़के को 'सत्यकाम' कहने लगे तो 'सत्यकाम' व्यक्ति वाचक हो गया। सम्भव है कि वह लड़का महा झूठा हो और उसे

राजदरबार से झूठ के अपराध में एक वर्ष का कारागार हो जाय और न्यायाध्यक्ष कहे 'सत्यकाम को एक वर्ष का कारगार दिया जाता है।' तो क्या कोई न्यायाधीश को कहेगा कि आप 'सत्यकाम' जैसे पुरुष को क्यों दण्ड देते हो। और यदि इस लड़के से पूर्व की लिखी हुई किसी पुस्तक में 'सत्यकाम' शब्द उसके वास्तविक अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो तो यह कहना भूल होगी कि उस पुस्तक में इसी झूठे सत्यकाम का उल्लेख है।

प्रश्न- आपके कथन से यह प्रकट होता है कि वेदों में आये हुये 'वसिष्ठ' आदि शब्द ऐतिहासिक वशिष्ठ (राम के गुरु) नाम के सूचक नहीं।

उत्तर- आप सत्य कहते हैं, हमारा यही अभिप्राय है।

प्रश्न- यह मत शायद स्वामी दयानन्द जैसे आधुनिक भाष्यकारों का है। प्राचीन भाष्यकारों का नहीं।

उत्तर- आपने खोजा नहीं अन्यथा ऐसी अटकल की बात न करते। स्वामी दयानन्द ने तो प्राचीन ऋषियों के मन्तव्य को ही दुहराया या स्पष्ट किया है। यह तो सभी भाषा-विज्ञ लोग मानते हैं कि पहले 'यौगिक' अर्थात् धात्वर्थ-द्योतक होता है। जिसके पास लाख रुपये हों उसी को लखपति कहेंगे। परन्तु पीछे से शब्द योग-रूढ़ि या रूढ़ी हो जाते हैं अर्थात् दरिद्र का नाम भी लखपति हो सकता है। आप अपने कुत्ते या हाथी का नाम भी लखपति रख सकते हैं। हम यहां कुछ उदाहरण देते हैं :-

(1) वसिष्ठ-वसु ऋग्वेद।
अतिशयेन वासयिता।
(ऋग्वेद 10/96/17 सायणभाष्य)

सर्वस्य वासयितृत्म:।
(ऋग्वेद 2/9/1 सायणभाष्य)

अत्रिम्-शत्रूणां अन्नानां वा भक्षक:।
(ऋग्वेद 2/8/5 सायणभाष्य)

अत्रि:-दु:खत्रयरहित: 'अत्रिर्नत्रय:'।
निरुक्त 3/17 (ऋग्वेद 1/139/9 सायणभाष्य)

करण्वा:-मेधाविन ऋत्विज:।
(ऋग्वेद 1/14/2 सायणभाष्य)

कण्वत:-अत्यन्त मेधावी।
(ऋग्वेद 1/48/4 सायणभाष्य)

कण्वास:-मेधाविन:।

Scanned by CamScanner

(ऋग्वेद 1/14/5 सायणभाष्य)

जमदाग्निना-प्रज्वलिताग्निना।

(ऋग्वेद 3/62/17 सायणभाष्य)

वसिष्ठ:-प्राणों वे वसिष्ठ ऋषि:।

(यजुर्वेद 13/54 उब्बट भाष्य)

महीधर भाष्य में शतपथ को उद्धृत किया है :-

"प्राणों वै वसिष्ठ ऋषिर्यद्वैनु श्रेष्ठतेन वसिष्ठोऽथो यद्वस्तृतयो वसति तेनो एव वसिष्ठ:"। (8/1/6)

अर्थात् श्रेष्ठतम होने से प्राण को वसिष्ठ ऋषि कहा गया।

भारद्वाज-"मनो वै भरद्वाज ऋषि अन्न वाजो यो वे मनो विभर्ति सोऽन्न वाजं भरति तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषि:।

(शपपथ 8/1/1/9)

देखो यजुर्वेद १३/५५ का महीधरभाष्य। यहाँ भारद्वाज का अर्थ है मन।

जमदग्नि:- **"चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदेनेन जगत् पश्यत्यथों मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषि:।"**

(शतपथ 8/1/2/3)

यजुर्वेद महीधर भाषा (१३/५६) जमदग्नि का अर्थ है आँख।

विश्वामित्र-'श्रोत्रं वे विश्वामित्रऽऋषिर्यदेनेन सर्वत: श्रृणोति अथो यदस्मै सर्वतो मित्रं भवति तस्माच्छीत्रं विश्वमित्रं ऋषि:।'

(शतपथ 8/1/2/6)

महीधर यजुर्वेद भाष्य 13/57 विश्वमित्र का अर्थ है 'कान'।

विश्वकर्म-"वाग्वै विश्वकर्म ऋषिर्वाचा हीदं सर्वकृतं तस्माद् वाग् विश्वकर्म ऋषि:।"

विश्वकर्म वाणी को कहते हैं क्योंकि वाणी से सब काम किया जाता है (शथपथ 8/1/2/9) महीघर का यजुर्वेद भाष्य (13/58)

कृष्ण (1) यजुर्वेद 2/1 इस से उब्बट कृत भाष्य में यह अर्थ दिये हैं :-

"अस्ति् कृष्णशब्दो वर्णवचनोऽन्तोदात्त:।"

अस्ति कृष्णाशब्दो मृग वचन आद्युदात्त:। अन्तोदात्त 'कृष्ण' का अर्थ है काला। आद्युदात्त 'कृष्ण' का अर्थ है मृग। महीधर भी ऐसा ही अर्थ करते हैं।

(1) कृष्णात् निकृष्ट वर्णात नैशात् तमस:। 'कृष्णं' कृष्यते निकृष्टा वर्ण:।

(निरुक्त 2.20) ऋग्वेद 1-123-1) सायणभाष्य 'कृष्ण' का अर्थ है निकृष्ट वर्ण अर्थात् काला रंग।

अर्जुन-(यजुर्वेद 10/21) अर्जुन नाम है इन्द्र का (उब्बट और महीधर भाष्य)

अर्जुन-श्वेत। **(ऋग्वेद 7/55/2 सायणभाष्य)**

अर्जुन-शुक्लवर्ण। **(ऋग्वेद 6/9/1 सायणभाष्य)**

भरतस्य-सर्वस्य जगतो मर्तूरुद्रस्य पुत्रा:।

(ऋग्वेद 2/36/2 सायणभाष्य)

रामम्-कृष्णं, शार्वर्रं तम:।

अर्थात् रात का अंधेरा। **(ऋग्वेद 10/3/3 सायणभाष्य)**

हमने यहाँ कुछ उदाहरण यह दिखलाने के लिये दिये हैं कि वेद के जिन शब्दों को व्यक्तिवाचक संज्ञा मानकर इतिहास बताया जाता है उनके अर्थ न केवल स्वामी दयानन्द ने अपितु सायण, उब्बट, महीधर आदि ने भी ऐसे ही किये हैं और शतपथ ब्राह्मण आदि में भी इनके ऐसे ही यौगिक अर्थ बताये गये हैं।

प्रश्न-क्या सायण आदि ने अत्रि आदि को ऋषि विशेष नहीं माना?

उत्तर-माना हो इससे क्या? ऐसा करने से उनकी ही सिद्धान्त हानि होती है। क्योंकि वेदों को अपौरुषेय और प्राचीनतम आदि ग्रन्थ मानकर फिर उनमें व्यक्तियों की कल्पना करना अपने ही मन्तव्यों को काटना है। अत: वेदों में जहाँ कहीं कोई व्यक्तिवाचक संज्ञा दीख पड़े वहाँ उसके यौगिक अर्थ करने का यत्न करना चाहिये। केवल नामों के सादृश्य से इतिहास की सिद्धि नहीं होती। अन्य घटनाओं से भी उसकी पुष्टि होनी चाहिये। ऐसा कहीं मिलता नहीं। एक दो शब्दों के सादृष्य से आधुनिक विचारकों ने कई विदेशीय घटनाओं से वेदों का सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास किया है। परन्तु वह भूल जाते हैं कि एक प्राचीनतम भाषा का जिसका प्रभाव भारतीय और विदेशीय सभ्यताओं पर हजारों वर्ष तक रहा हो, उसके कुछ शब्द तो अवश्य ही यत्र तत्र मिल सकते हैं। फिर वेद और संस्कृत भाषा के विषय में भारतवर्ष में एक विचित्र अवस्था रही। कुछ समय के लिये त्याज्य और लुप्त होकर भी समानान्तर में संस्कृत का और वेदों का प्रचार लौट-लौट कर पुनर्जीवित होता रहा। अत: संस्कृत भाषा प्राचीन होते हुये भी अन्य प्राचीन भाषाओं के समान सर्वथा नष्ट नहीं हुई और आज भी नवीन सी प्रतीत होती है। प्राय: अधिकतर वैदिक शब्दों के रूप वही हैं जो आजकल की संस्कृत के हैं और साधारण संस्कृतज्ञ भी उनको समझ सकते हैं। कुछ मौलिक शब्दों के मूल अर्थ खोजने पड़ते हैं और उनका नूतन भावनाओं से अलग करके देखना होता है। जैसे यदि कहीं अर्जुन शब्द आ जाये तो अनायास यह नहीं समझ लेना

Scanned by CamScanner

चाहिये कि युधिष्ठिर के भाई अर्जुन का ही उल्लेख हैं। आज भी तो वह ही नाम रक्खे जाते हैं।

सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेद भाषा के उपोद्धात में स्वयं यह इतिहास सम्बन्धी प्रश्न उठाकर उसका निराकरण किया है :-

जैमिनि के 'अनित्यदर्शनाच्च' (जै.स. 1/1/28) में पूर्व पक्ष उठाया है कि 'बबर', प्रावाहरिण: आदि शब्दों के (तै.सं. 7/1/10/2) देखने से वेद अनित्य ठहरते हैं क्योंकि उनमें बबर आदि का वर्णन है। इस पर सायणाचार्य जैमिनि का ही उत्तर पक्ष का सूत्र देते हैं 'परं तु श्रुतिसामान्य मात्रम्'। (जैमिनि सूत्र 1/1/31)। सायण के शब्द यह हैं :-

"न तु तत्र अनित्यो बबराख्य: कश्चित्पुरुषों विवक्षितः। किंतु बबर इति शब्दानुकृतिः। तथा सति बबरेति कुर्वन् वायुरभिधीयते। स च प्रावाहरिण: प्रकर्षेण, बहनशीलः। एव मन्यत्राप्यूहनीयम्"।

अर्थात् बबर कोई मनुष्य विशेष नहीं है। वायु में जो शब्द होता है उसी से उसका नाम 'बबर' है। सदा बहते रहने से वह 'प्रावाहणि:' (बहने वाला) भी कहलाता है।

यहाँ सायण का वही मत है जो जैमिनि का और वही स्वामी दयानन्द का। इससे विपरीत वेद में इतिहास मानने वाले सायण के भी विरोधी हैं और अन्य प्राचीन ऋषियों के भी।

प्रश्न-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में कौन पहले बना और कौन पीछे? चार वेदों को आवश्यकता क्या पड़ी?

उत्तर-यह तो नहीं कहा जा सकता कि एक ही दिन या एक ही घड़ी में चारों वेदों का आविर्भाव हुआ हो। यह असम्भव है। परन्तु चारों वेदों के देखने से ज्ञात होता है कि यह लगभग समकालीन हैं। और उनका प्रचार सहयोगी ऋषियों द्वारा हुआ है। क्योंकि चार वेदों का चारों में उल्लेख है। जैसे :- ऋग्वेद में।

ऋचा अक्षर परमे... (1/164/39)। "अत्र ऋक शब्देन ऋक् प्रधानभूता सांगापरविद्यात्मकाश्चत्वारो वेदा उच्चयन्ते"।

(सायणभाष्य)

सायणचार्य का मत है कि इस मन्त्र में ऋक् शब्द से चारों वेदों का अभिप्राय है।

(2) ऋक् सांमाभ्यामभिहितौ गावौ। 10/85/11 ऋग्वेद और सामवेद के समान दो गायें।

(3) ऋक् सामाभ्यां प्ररथं वर्तयन्ति (10/114/6) तं रथं यज्ञं ऋक्सामाभ्यां

प्रवर्तयन्ति प्रकर्षेण संपादयन्ति। **(सायणभाष्य)**

उस यज्ञ रूपी रथ को ऋग्वेद और सामवेद द्वारा सम्पादित करते हैं।

यहाँ ऋग्वेद में स्पष्टतया सामवेद का उल्लेख करते हैं।

(4) विश्वे देवा अनुतत्ते यजुर्गुः।

(ऋग्वेद- 10/12/31)

सब देव तुझ सम्बन्धी यजु का पीछे से गान करते हैं।

(5) तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जीज्ञरे छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।। **(ऋग्वेद-** 10/90/9)

इस मन्त्र में तो स्पष्ट दिया है कि उस यज्ञ रूपी परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वेद (छन्दांसि) का आविर्भाव हुआ।

(6) तेऽविन्दन् मनसा दीध्याना यजुःष्कन्नं प्रथम देवयानम्।

(ऋग्वेद- 10/18/13)

उन विद्वानों ने मन से ध्यान करके मुक्ति के देने वाले मुख्य साधन अर्थात यजुर्वेद को कर्मकांड के लिये प्राप्त किया। यहाँ ऋग्वेद में यजु का उल्लेख है।

(7) अग्निर्जातो अथर्वणा विदद् विश्वानि काव्या।

(ऋग्वेद- 10/21/5)

अथर्वा से उत्पन्न हुई विद्या ने समस्त काव्यों का ज्ञान प्राप्त किया।

(8) अंगिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोभ्यास।

तेषां वयं सुमतौ यजियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम।।

(ऋग्वेद- 10/14/6)

हमारे जो पितर सोम यज्ञ करने वाले अथर्व को जानने वाले, अनेक विद्याओं के विशेषज्ञ हैं हम उनकी शुभकानायें चाहते हैं जिससे हमारा कलयाण हो।

(9) इममु त्यमथर्वदग्निं मन्थन्ति वेधसः।

(ऋग्वेद- 6/15/17)

विद्वान् लोग अथर्व के समान यज्ञों का सम्पादन करते हैं। इस प्रकार अथर्व का वर्णन ऋग्वेद में कई स्थलों पर है।

सामवेद में अथर्व आदि का ही कहीं-कहीं उल्लेख है परन्तु सामवेद में तो अधिकतर ऋग्वेद के ही मन्त्र हैं, इसका वर्णन हम आगे करेंगे। अब हम यजुर्वेद को लेते हैं।

(1) ऋक् सामयोः शिल्पे स्थस्तेः। **(यजुर्वेद-** 4/9)

(2) तस्य ऋक्-सामान्यप्सरसः। **(यजुर्वेद-** 18/43)

(3) स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च सामच। **(यजुर्वेद-** 18/29)

Scanned by CamScanner

(4) यजुर्भिर्यजूंषि सामभिः सामानि। ऋग्भिऋचः।

(**यजुर्वेद**- 20/12)

(5) ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये, साम प्राण प्रपद्ये।

(**यजुर्वेद**- 36/1)

(6) तुम त्वा हध्यङ्ङृ.ऽषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। (11/33)

(7) अथर्वभ्यो अवतोकान्। (**यजुर्वेद**- 30/15)

(8) त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।

(**यजुर्वेद**- 11/32 तथा 15/22)

यह मन्त्र ऋग्वेद और सामवेद दोनों में हैं :- (**सामवेद**- 1/1/9 तथा ऋग्वेद- 6/16/13)।

(9) अथर्वोपावह्रियमाणः। (**यजुर्वेद**- 8/56)

अब अथर्ववेद में देखिये :-

(1) ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वते।
एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः।।

(2) ऋचं साम यदप्राक्षं हबिरोजो यजुर्बलम्।
एषमा तस्मान्या हिंसीद् वेदः पृष्ठः शचीपते।।

इन मन्त्रों में ऋक्, यजु और साम तीनों का उल्लेख है।

(**अथर्ववेद**- काण्ड- 7, सुक्त- 54, मन्त्र- 1/2)।

(3) ऋकूशंसितः सामतेजाः। (**अथर्ववेद**- 10/5/30)

(4) स वा ऋग्भ्योडजायत तस्मादुचोऽजायन्त।

(**अथर्ववेद**- 13/7/10)

(5) यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्महो।
एकर्षि र्यस्मिन्नार्पितः स्कभभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः।
यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्घाऽग्डिरसो मुखं।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः।।

(**अथर्ववेद**- काण्ड 10 सूक्त 7, मन्त्र 14 और 20)

इन दो मंत्रों से स्पष्ट विदित होता है कि 'प्रथमजा ऋषयः' अर्थात सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होने वाले ऋषियों ने ऋग्वेद आदि चारों वेदों को प्राप्त किया और उन्होंने उस ब्रह्म उपदेश का एक स्वर से इस प्रकार प्रतिपादन किया मानो वह एक ही ऋषि हैं और उनमें कोई भेद नहीं है। चारों वेदों को 20वें मन्त्र में एक शरीर मान कर उनमें लोग, मुख आदि की कल्पना की गई है।

प्रश्न- आपने केवल ऋक्, साम, यजु, अथर्व शब्दों को देखकर ही कल्पना कर ली। प्रसंग और अर्थों का विचार नहीं किया। और न कोई ऐसा मन्त्र प्रस्तुत किया जिसमें स्पष्टतया लिखा होता है कि वेद सब समकालीन हैं।

उत्तर- ऐसी बात तो नहीं है। आप हमारे उद्धृत सब मन्त्रों पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालें। पुराने विचारों से प्रभावित नहीं स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करें तो ज्ञात हो जायेगा कि प्रसंग कुछ भी हो और गौण अर्थ कुछ भी हों इनसे यह सिद्ध हुये बिना नहीं रह सकता ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का संकेत चारों वेदों में मिलता है।

प्रश्न- कहीं-कहीं तीन वेद अर्थात् ऋक्, यजु और साम का ही उल्लेख है। इससे विदित होता है कि अथर्व पीछे से जोड़ा गया है।

उत्तर- कहीं-कहीं तीन वेद और तीन विद्याओं (त्रयी विद्या) का उल्लेख अवश्य है। परन्तु उनमें अथर्व को भुलाया नहीं गया। ज्ञान, कर्म और उपासना, मनुष्य जीवन के समस्त विभागों के यह तीन मुख्य भेद हैं। इन्हीं को कहीं-कहीं ऋक् यजु और साम कहकर पुकारा है। परन्तु अथर्ववेद में इन तीनों विद्याओं का विशद समावेश है। अथर्ववेद को नवीन मानने की कल्पना तो अत्यन्त नवीन है। सायण आदि मध्य युग के भाष्यकारों के समय भी चारों वेदों को अपौरुषेय माना जाता था। अथर्ववेद में कोई ऐसी नवीनता नहीं मिलती जिसके आधार पर उसको पीछे से मिलाया हुआ माना जावे। यदि तीन ही वेदों को माना जाय तो भी कम से कम इतना तो स्वीकार ही करना पड़ेगा कि तीन वेद समकालीन हो गये और आदि सृष्टि के हुये। अथर्ववेद को नया कल्पित करने के लिये कोई स्पष्ट ऐतिहासिक प्रमाण हो या कोई अन्य साक्षी मिले। जब अथर्ववेद का अथर्वा या अंगिरा से सम्बन्ध है और इसका नाम बराबर तीनों वेदों में आता है तो अथर्ववेद को उसी युग का मानना पड़ेगा। अथर्ववेद में बहुत से मन्त्र ऋग्वेद के हैं। और शेष की भाषा या भावों में भी कुछ नहीं। न उसके किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख है जिसके कारण उसे नवीन माना जाय।

यहाँ एक बात और याद रखनी चाहिये। अथर्ववेद को कई नामों से पुकारा गया है। अथर्ववेद, आंगिरस, छन्द तक ब्रह्म। 'ब्रह्म' को कहीं-कहीं सब वेदों के अर्थों में प्रयुक्त किया है। अतः ईश्वर को ब्रह्म योनि या शास्त्र की योनि भी कहा है।

शतपथ ब्राह्मण का निम्न अवतरण विचारणीय है:-

"सप्ताक्षारं वै ब्रह्म! ऋगिति एकाक्षरम्। यजुरिति द्वे। सामेति द्वे, अथ यदतो अन्यद् ब्रह्मैव तद् द्वयक्षरं वै ब्रह्म। तदेतत् सर्वः सप्ताक्षरे ब्रह्म।

Scanned by CamScanner

(**शतपथ ब्राह्मण**- 10/2/4/6)

वेद सात अक्षरों वाला है। ऋक् एक अक्षर हुआ, यजु दो, समा दो, अब जो इसके अतिरिक्त वेद हुआ वह 'ब्रह्म', ब्रह्म मे दो अक्षर हैं। इस प्रकार-

ऋक्	= 1
यजु	= 2
साम	= 2
ब्रह्म	= 2
योग	= 7 अक्षर हुए

यदि 'ब्रह्म' शब्द से चारों वेदों का अभिप्राय हो तो ब्रह्म 7 अक्षर वाला हुआ और यदि ब्रह्म से केवल ब्रह्मवेद (चौथा वेद) माना जाय तो ब्रह्म में दो अक्षर हुए। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण के काल में भी अथर्ववेद को चौथा वेद मानने में कोई विपत्ति नहीं उठाता था।

प्रश्न- चार वेद अलग-अलग क्यों हैं और उनमें बहुत से मन्त्र वही क्यों मिलते हैं?

उत्तर- वैदिक धर्म के ग्रन्थों में ऋषियों को ईश्वरीय ज्ञान का आदि प्रचारक माना गया है। यह चारों ही मिलकर आदि प्रचारक थे जिसका नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा था। इनमें प्रमुख अग्नि ऋषि को ऋग्वेद का माना है। अन्य ऋषि इसी ऋग्वेद के मन्त्रों को अपनी-अपनी विद्या में विनियुक्त करते होंगे। जैसे 'आदित्य ऋषि' ने प्राय: बहुत से ऋग्वेद के मन्त्रों को ही संगीत का रूप दिया। उनके स्वर आदि स्थापित किये। और उनका क्रम भी संगीत शास्त्र की अपेक्षा से ही दिया गया। वायु ऋग्वेद के ही आधार पर कर्मकाण्ड का प्रचार किया और ऋग्वेदीय 'हिरण्यगर्भ' आदि मन्त्रों का 'हिरण्यगर्भ इत्येष:' कहकर प्रयोग किया। यह एक दूसरे के विरोधक नहीं थे अपितु पूरक थे। छान्दोग्य उपनिषद् में जो उद्गीथ अर्थात् उस परमेश्वर उपासना का उल्लेख करती है जिसकी स्तुति गाई जा सके, स्पष्ट लिखा है कि सामवेद ऋग्वेद से लिया गया। देखिए :-

(१) तदेतत् एतस्यां ऋचि अध्यूढं साम।

(२) तस्माद् ऋचि अध्यूढ़ं साम गीयते॥

(छान्दोग्य उपनिषद् प्रपाठक 1, खण्ड 6, प्रवाक 1,2,3,4,5)

बार-बार ऋक् अध्यूढ़ सामगान पर बल देने का यही तात्पर्य हो सकता है। आप इस बात को एक दृष्टान्त द्वारा समझिये। वैज्ञानिक लोग अपने परीक्षालयों में प्राकृतिक नियमों की खोज करते हैं। उन्हीं के आधार पर दूसरे समकालीन

आविष्कार करते हैं और कुछ अन्य समकालीन आविष्कारों को सार्वजनिक रूप देकर सबके उपयोगी बनाते हैं। यहआवश्यक नहीं किसी एक नियम का खोजक उसके समस्त उपयोगी विभागों का निमित्त भी हो। कवि और गायक भी अलग-अनग होते है। कवि कविता कहता है। संगीत-शास्त्रज्ञ उसके स्वरों को निर्धारित करता है। ऋक् और साम की तुलना करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। इसीलिये पूर्वमामांसा में कहा है 'गीतिषु सामाख्या' (2/1/36) अर्थात् जो मन्त्र गीति में प्रयुक्त होते हैं उनको 'साम' कहते हैं। 'अग्न आयाहि वीतये' यह मन्त्र ऋग्वेद मण्डल 6, सूक्त 16 का दसवाँ मन्त्र है। यह ऋग्वेद में ऋक् है। सामवेद में यही सबसे पहला 'साम' है क्योंकि वहाँ यह 'गीति' है।

सामवेद केवल गान का वेद है। जो विशेषतायें और लाभ 'संगीत' के होते हैं वह सब सामवेद में पाये जाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि सामवेद के मन्त्रों का कोई अर्थ नहीं, कोई अच्छा गीत निरर्थक नहीं होता। जो बात साधरणतया बिना गाये कही जाती है वही जब गाकर संगीत के नियमानुसार कही जाती है तो उसमें एक अपूर्व विशेषता उत्पन्न हो जाती है जो सूक्ष्म आध्यात्म विद्या से सम्बन्ध रखती है। यही कारण है कि सामवेद में मन्त्र नही हैं जो ऋग्वेद में। छन्द, स्वर आदि भी वही हैं। शब्द विन्यास भी वही है। अर्थों में भी स्थूल रीति से भेद नहीं परन्तु सूक्ष्म भावनाओं के उत्पादक होने से सामवेद की विशेषता है।

'हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिये।'

यह एक साधारण भजन का पद है। इसको कोई भी पढ़ सकता है। अर्थ तो केवल इतना ही है कि परमात्मा से 'शुद्धता की प्रार्थना की गई है। परन्तु इसी पद को जब संगीत का प्रवीण स्वर सहित गाता है तो अर्थ में भी विचित्र गाम्भीर्य उत्पन्न हो जाता है। इसीलिये स्वर प्रक्रिया में सामवेद के ठीक-ठीक गाने पर अधिक बल है।

यज्ञ कर्णमण्यजपन्यूङ्खसामसु (अष्टाध्यायी 1/2/34 की व्याख्या करते हुये ऋषि दयानन्द ने लिखा है-"यज्ञ कर्म यज्ञ सम्बन्धी कर्म करने मे जो मन्त्र पढ़े जाते हैं वहाँ उदात्त, अनुदात्त और स्वरित को एक श्रुति स्वर हो उदात्तादि का पृथक-पृथक श्रवण न हो। परन्तु जप करने में, तथा न्यूंख (एक प्रकार के वेद के स्तोत्र का नाम है) वहाँ और सामवेद में उदात्तादि के स्थान में एक श्रुति न हो किन्तु तीनों स्वर पृथक-पृथक बोले जावें।

फिर देखिये :-

विभाषा छन्दसि (अष्टाध्यायी 1-2-36) "वेद मन्त्रों के सामान्य उच्चारण करने में उदात्त अनुदात्त और स्वरित को एक श्रुति स्वर विकल्प कर के होता

Scanned by CamScanner

है। एक श्रुति पक्ष में उदात्तादि का भिन्न-भिन्न उच्चारण नहीं होता" सो ये दो पक्ष तीन वेदों में घटते हैं। सामवेद में तीनों स्वर भिन्न-भिन्न उच्चारण किये जाते हैं, क्योंकि 11 सूत्र में सामवेद में एक श्रुति होने का निषेध कर चुके हैं।

(देखो 'स्वौवर' पृ.-7)।

ऋषि दयानन्द के दो वाक्यों पर विशेष ध्यान देना है- अर्थात तीन वेदों (ऋक्, यजु और अथर्व.) में स्वर के नियमों के पालन में कुछ ढील दी गई है। सामवेद में नहीं दी गई। और दी भी क्यों जाती? साम तो साम इसीलिये है कि वहसंगीत है। विशेष रस उत्पन्न करता है। मेरीसमझ में सामवेद के जो भाष्य अर्थ, व्याकरण आदि की अपेक्षा से किये जाते हैं वह ठीक नहीं है। यह काम तो अन्य वेदों का है। सामवेद का काम तो रसोत्पादन जो संगीत के नियमों के आधार पर ही हो सकता है। आप ऋग्वेद और सामवेद दोनों स्थानों पर ही हो सकता है। आप ऋग्वेद और सामवेद दोनों स्थानों पर आने वाले मन्त्रों को मिलाइये, स्वरों को मिलाइये छन्दों को मिलाइये, ऋषि और देवताओं को मिलाइये। कोई विशेष अन्तर नहीं मिलेगा परन्तु सामगान में तो भेद होगा ही।

इसी प्रकार जब एक ऋग्वेदीय मन्त्र कर्मकाण्ड में पढ़ा जायेगा तो वहाँ क्रिया के व्यापार परअधिक बल होगा। यही यजुर्वेद का 'यजुःत्व' है। कर्मकाण्ड का अर्थ केवल आहुति देना नहीं। जीवन के वास्तविक कर्म ही यजु हैं। खिचड़ी बनाने वाले की दक्षता इसमें है कि खिचड़ी स्वादिष्ट हो। वह स्वर सहित शब्द बोलता है या नहीं। इस पर बल नहीं दिया जाता। और साधारण भूलें भी सहन कर ली जाती हैं।

प्रश्न- वेद मन्त्रों के अर्थों में मतभेद क्यों हैं?

उत्तर- मतभेद वेद की अन्तः साक्षी के कारण नहीं अपितु समयान्तर की कल्पनाओं के कारण है। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि वेद अति प्राचीन है और उनके शब्द तथा भावों को अनेक युगों में होकर गुजरना पड़ा है। भिन्न-भिन्न युगों में शब्दों के अर्थों और प्रयोगों में भेद होता गया। हमारे लिये यह कठिन है कि प्रत्येक युग की ऐतिहासिक घटनाओं को इस प्रकार क्रमशः रख सकें कि भेद स्पष्ट हो जाये। हम तो लाखों वर्ष के प्राचीन युगों को केवल 'प्राचीन' कहकर एक सा समझ लेते हैं। उनमें स्वयं नवीनता और प्राचीनता का तारम्य रहा होगा। एक शब्दको जो अर्थ दस दजार वर्ष पूर्व था वह शायद ग्याहर हजार वर्ष पूर्व न रहा होगा। हमारे लिये आज दस और ग्यारह हजार में कुछ भेद न हो। परन्तु उस समय को एक हजार वर्ष का बहुत बड़ा अन्तर था। अतः यदि ग्यारह हजारवें वर्ष में माना हुआ अर्थ दस हजारवें वर्ष के साहित्य में लगा दिया जाये

तो बड़ी भारी भूल होगी। यही भूल वेदार्थ में होजाती है। इस भूल से बचने का एक ही मार्ग है जो यास्क आदि ऋषियों ने निर्धारित किया है और आधुनिक ऋषि स्वामी दयानन्द ने जिसको पुनः प्रचारित किया है। अर्थात् वेदों के यौगिक अर्थ लिये जायें। इस नियम का सावधानी से अवलम्बन करने से बहुत कुछ भ्रम दूर हो सकता है। जैसे वेद में आये हुये 'कृष्ण' शब्द को जब हम महा भारतकालीन कृष्ण का इतिहास मस्तिष्क में रखकर सोचेंगे तो धोखा होगा ही। इसी प्रकार इस युग में भी कई कृष्ण नाम वाले व्यक्ति हैं और उनका अपना इतिहास है। इस इतिहास को दृष्टि में रखकर यदि महाभारत के 'कृष्ण' का इतिहास को दृष्टि में रखकर यदि महाभारत के 'कृष्ण' का अर्थ निकाला जाय तो और भी अनर्थ होगा।

प्रश्न- ऐसे प्राचीन और संदिग्धार्य वेदों का ऐतिहासिक, या भाषासम्बन्धी मूल्य तो हो सकता है। परन्तु इनका धार्मिक मूल्य इस युग में क्या है। अतः यह मान भी लिया जाय कि वैदिक धर्म किसी युग का श्रेष्ठतम धर्म रहा होगा। परन्तु आज उसकी व्यापहारिक उपयोगिता तो कुछ नहीं।

उत्तर- ऐसा समझने में आप बहुत बड़ी भूल करते हैं। जब तक वेदों का अनुशीलन न कियाजाय उस समय तक यह तर्क ठीक मालूम होता है। परन्तु यदि वेदों का अनुशीलन करें तो वेदों की अन्तः साक्षी से पता चलता है कि वेदों की उपयोगिता ही नहीं अपितु अनिवार्य आवश्यकता आज भी सिद्ध है। धार्मिक विचारों में विशदता नहीं आई अपितु उल्टा विकार हो गया है और होता आ रहा है। यह केवल वेदों के पुनः प्रचार से ही सम्भव है। बहुत सी मौलिक सच्चाइयाँ ऐसी थीं जिनका वैदिक काल में परिज्ञान था और आजकल के धर्मो में उनको सर्वथा भुलाकर मानवजाति के लिये समस्यायें उत्पन्न कर दीं। इनका एक मात्र उपाय है वेदों का पुनः प्रचार।

प्रश्न- क्या आप एक दो बातें बता सकते हैं जिससे आपके कथन पर श्रद्धा बढ़ जाय?

उत्तर- हाँ! आजकल के धर्मो का सबसे बड़ा दोष है वैयक्तिक आधिपत्य जिसको गुरुडम कह सकते हैं। यह अप्राकृतिक है। प्रकृति का नियम यहहै कि वह व्यक्तियों पर बल नहीं देती। व्यक्ति तो आते जाते रहतेहैं। नियमों का प्रवाह अनादि और अनन्त है। आधुनिक धर्मो ने अपने लिये एक विशेष व्यक्ति को चुन रक्खा है जिसको वह अवतार, पैगम्बर, रसूल, ईश्वर प्रतिनिधि आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। उनके धर्म का नाम भी उस मनुष्य के नाम पर होता है। भिन्न-भिन्न गुरु के भिन्न-भिन्न अनुयायी हैं। इस प्रकार मानव जाति दलों में

Scanned by CamScanner

विभक्त हो गई है। प्रत्येक धर्मवाले अपने गुरु को सर्वश्रेष्ठ मानते और अनेक कल्पित गुणों का उसमें अभ्यास कर लेता है। अत: गुण की अपेक्षा व्यक्ति की अधिक पूजा होती है। वैदिक समय में यह बात नहीं थी। ईश्वर को सबका गुरू मानते थे। और कोई धर्म किसीव्यक्ति के नाम पर न था। सब व्यक्ति, (ऋषि, मुनि आदि) अपने को ईश्वर का उपासक और आपस में बराबर मानते थे। योग दर्शन में पतञ्जलि मुनि ने लिखा है कि-

स एष पूर्वेषामपि गुरु: कालेनानवच्छेदात्। (योग दर्शन 1/21)

अर्थात् ईश्वर काल से ऊपर है। अत: वही पुराने से पुराने लोगों का गुरु है। उपनिषद की रीति है कि वे किसी विशेष पुरुष के नाम पर अपील नहीं करते। आचार्य शिष्य को उपदेश भी देता है तो कहता है।

यानि यान्यस्मांक सुचरितानि तानि तानि सेव्यानि नो इतराणि।

"देखो मेरी अच्छी बातों का अनुकरण करना, बुरी बातों का नही।" इस प्रकार वैदिक काल में गुरु-शिष्य परम्परा के अत्यन्त दीर्घ और नैरन्तर्य-मुक्त होते हुये भी गुरुडम को कोई अवसर नहीं मिला। परन्तु अब तो यदि किसी ने कोई धर्म स्थापित किया तो अपने को विशेष पुरुष कहा और अपने धर्म का नाम अपने नाम पर रक्खा और सामान्य जनता से सर्वोपरि करने के हेतु अपना ईश्वर से विशेष सम्बन्ध घोषित किया, उसके अनुयायइयों ने स्वार्थवश अपने गुरुओं के विषय में मनमानी बातें घोषित कीं। कालान्तर और देशान्तर में नये शिक्षक हुये। उन्होंने भी अपने नाम पर मत चलाये और चेले बनाये। होते-होते इन गुरुओं और शिष्य में अपने दल अनाये। उन्हीं के बोये हुये काँटे के बीज आज मानव जाति को पीड़ा देते हैं। प्राकृतिक नियमों का प्रभाव कम हो गया और व्यक्तियों की प्रमुखता बढ़ गई है। इससे ईश्वर के स्थान में उन विशेष व्यक्तियों की पूजा होती है। प्राकृतिक नियम तो सदा एक से रहते हैं परन्तु व्यक्ति तो हर युग में बदल जाते हैं। यदि उन व्यक्तियों की पूजा होने लगे तो भिन्नता अवश्यम्भावी है। एक ईश्वर की उपासना के छूट जाने पर मनुष्य विशेष व्यक्तियों की पूजा करने लगता है। और उन व्यक्तियों के मर जाने पर उनकी समाधि और उनकी मूर्तियाँ पुजने लगती हैं। उन मूर्तियों की पूजा विशेष पुजारियों और धर्माध्यक्षों की रोटी का साध न बन जाती है। इससे अनेक प्रकार के भ्रमजाल और ठगी का आविष्कार होता है। यदि लोग फिर वेद का ज्ञान प्राप्त कर लें तो मौलिक धर्म की ओर उनकी रुचि हो जावे।

आश्चर्य की बात है कि जितने नवीन धर्म हैं उनमें कोई ऐसी नवीनता नहीं जिससे उनकी उत्कृष्टता सिद्ध होती हो। हाँ, विकार तो बहुत से आ गये हैं। कुछ

वेदों के अयथार्थ अर्थ समझने के कारण और कुछ वेदों को त्यागने के कारण।

प्रश्न- वेदों का महत्व उनके गाने में है या उनके अर्थों में? कुछ लोगों का मत है कि वेदों के शब्दों का क्रम और उनके गाने की रीति (स्वर) इस प्रकार स्थापित की गई है कि यदि उनको स-स्वर विधि-पूर्वक गाया जाय तो ध्वनि की तरंगे आकाश में उत्पन्न होकर अलौकिक फल उत्पन्न करती हैं। उनके अर्थ जानने की आवश्यकता नहीं। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि अशुद्ध उच्चारण से अनिष्ट परिणाम भी निकलता है। अत: जो लोग विविधपूर्वक वेद-गान नहीं जानते उनको वेद पढ़ना ही नहीं चाहिये क्योंकि अनिष्ट तरंगे मनुष्य को मार डाल सकती हैं। थोड़े से उच्चारण भेद से संस्कृत शब्दों का अर्थ बदल जाता है। जैसे 'सकल' का अर्थ है 'पूरा'। 'शकल' का अर्थ है एक टुकड़ा, अर्थ बिल्कुल उलटा हो गया। इसी प्रकार 'सकृत' का अर्थ है -एक बार'। 'शकृत' का अर्थ है विष्ठा। इस प्रकार वेद वह पैनी तलवार है जिनसे अपने ही हाथ के कट जाने का भय रहता है। न जाने कब अशुद्ध उच्चारण करने से हानि पहुँच जाय। इसलिये वेद हर एक को नहीं पढ़ना चाहिये।

उत्तर- आप के कहने में बहुत थोड़ी सच्चई है। इतना तो सत्य ही है कि शब्दों का उच्चारण शुद्ध होना चाहिये और बुद्धिमान् पुरुष न करेगा। परन्तु 'अलौकिक प्रभाव' और 'अनिष्ट-भय' की बात असत्य और केवल काल्पनिक है। यह ठीक है कि प्रत्येक ध्वनि से तरंगे आकाश में उठती हैं। और वेद सस्वर पढ़ने चाहिये। अशुद्ध उच्चारण का पक्ष तो कोई उन ध्वनियों का हर्ष, मोद, अप्रियता, रोष घृणा के रूप में सुनने वाली आत्मा पर प्रभाव भी पड़ता है। अच्छा गाना सुनकर प्रसन्नता होती है। कर्कश शब्द बुरा लगता है। परन्तु ध्वनि का प्रभाव केवल इतना ही है। वह कर्त्तव्य का भोक्तव्य का स्थानापन्न नहीं हो सकता। कुछ लोग समझते हैं कि यज्ञ में जो वेद मन्त्र पढ़े जाते हैं उनकी ध्वनि मात्र के प्रभाव से वर्षा हो जाय या यज्ञमान का कल्याण हो जाय। यह बात सर्वथा असत्य है। यदिऐसा होता तो वेद का भाष्य क्यों किया जाता। और ऋषि लोग वेदानुकूल आचरण पर कभी बल न देते। केवल 'सामवेद' से ही काम चल जाता। अन्य वेदों की आवश्यकता ही न होती। उच्चारण मात्र से कोई वेदज्ञ नहीं हो जाता। 'वेद का तो स्वयं अर्थ है ज्ञान, ज्ञान उच्चारण मात्र तो नहीं होता। शब्द, अर्थ और उसके सम्बन्ध को वेद कहते हैं। इसीलिये 'वेदों' में विधि (यह करो) और निषेध (यह न करो) दोनों का वर्णन है। जैसे :-

मा गृध (यजु.- 40/1) लालच मत करो।

अनुव्रत: पितु: पुत्र: (अथर्ववेद- 3/30/2) पुत्र पिता के व्रतों का अनुकरण

Scanned by CamScanner

करे।

जाया पत्ये मधुमती वाचं वदतु (अथर्व- 3/30/2) पत्नी पति से मीठा बोले।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् (अथर्व.- 3/30/3) भाई-भाई से द्वेष न करे।

संगच्छध्वम् संवदध्वम् (ऋग्वेद- 10/19/9) साथ चलो। साथ बोलो।

अक्षैर्मा दीव्यः (ऋग्वेद- 10/34/13)

कृषिमित् कृषस्व (ऋग्वेद- 10/34/13) खेती करो।

वित्ते रमस्व (ऋग्वेद- 10/34/13) धन का भोग करो।

इन आदेशों का यह अभिप्राय तो कदापि नहीं कि अमुक्त मन्त्र के उच्चारण मात्र से खेत में अन्न उत्पन्न हो जायेगा। मन्त्र की स-स्वर ध्वनि कान को अच्छी लग सकती है परन्तु खेती नहीं कर सकती। खेती तो अर्थ समझ कर अनुकूल आचरण करने से ही होगी। "मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्" मन्त्र का स-स्वर पाठ करने मात्र से भाई-भाई का द्वेष दूर न होगा जब तक आत्म-त्याग करके स्नेह के साध न सम्पादित न किये जायें। अतः यह कहना सर्वथा भ्रम मूलक है कि केवल वेद के संगीत मात्र से फल मिल जाता है। और वेदार्थ जानने की आवश्यकता नहीं। वेद-पाठ तो वेदाध्ययन की पहली सीढ़ी है। दूसरी है अर्थज्ञान और तीसरी है आचरण। जब तक यह तीनों पूरे नहीं फल की प्राप्ति हो नहीं सकती। इसीलिये ऋषियों ने कहा है :-

यन्मनसा ध्यायति तद् वाचा वद्ति।

यद् वाचा वदति तत्कर्मणा करोति। यत्कर्मणा करोति तदभि सम्पद्यते।

जैसा मन में सोचता है वैसा वाणी से बोलता है। जैसा वाणी से बोलता है, वैसा कर्म करता है। जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है।

तोते के समान वेदें को रटने मात्र से काम नहीं चलता।

प्रश्न- तो वेद का पाठ किया ही क्यों जाय?

उत्तर- उसका भी फल है। बिना पहली सीढ़ी पर चढ़े हुये ऊपर पहुँच नहीं सकते। पठन मात्र में इतना लाभ तो अवश्यक है कि पढ़ने की प्रवृत्ति होती है औरपठन-पाठन की पद्धति चलती रहती है। जिन लोगों ने तोते के समान वेद रटे उन्होंने भी इतना उपकारतो अवश्यक किया कि आज भी वेद उपलब्ध हैं। उन्होंने वेदों को लोप होने से बचा लिया। अर्थ न जानने से यह हानि हुई कि लोगें ने वेदानुकूल आचरण छोड़ दिय। आर वैदिक धर्म के स्थान में अनेक वेद-विरुद्ध मत फैले गये। आरम्भ तो वेद पाठ से ही करना होगा। परन्तु वहीं उसकी समाप्ति नहीं होनी चाहिये। 'अथ श्री' और 'इतिश्री' में तो भेद है। 'अथ'

का अर्थ 'इति' नहीं, कृतज्ञता तो हम उन सबके लिये प्रकट करते हैं जिन्होंने वेदाध्ययन में कुछ भी सहायता की। जो डाकिया किसी शुभ समाचार का पत्र लाता है वह भी धन्यवाद का पात्र है। परन्तु उतने ही से तो काम नहीं चलता।

प्रश्न- इस विषय में वेदों की स्पष्ट आज्ञा क्या है?

उत्तर- सुनिये:-

उत त्वं सख्ये स्थिरपीरतमाहुनैनं हिम्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रवाँ अफलामपुष्पाम।।

(ऋग्वेद- 10/71/5)

सायणाचार्य का अर्थ :-

त्वं एत एकमपि सख्ते विदुषां संसदि।...

स्थिरपीतं... एवं विज्ञातार्थे पुरुषं।... वाजिनेषु सारभूतेषु निरूपणीयेषु अर्थेषु एनं न हिवन्ति न वहिः कुर्वन्ति। एनं पुरुस्कृत्यैव सर्व वेदार्थ विचारयन्तीत्यर्थः। इत्यर्थज्ञः प्रशस्तः।

पहले टुकड़े का अर्थ :- जो वेदों का अर्थ समझता है उसका विद्वानों की सभा में आदर होता है। यहाँ अर्थ जानने वाले की प्रशंसा है।

अनन्तरमुत्तरार्धेन केवल पाठकों निन्थते।

अब दूसरे टुकड़े में उस पुरुष की निन्दा है जो केवल पाठ करता है। अर्थ नहीं समझता।

एषः अविज्ञातार्थ पुरुषः अधेन्वा धेनुत्वावि वर्जितया कामाना-मदोग्ध्रया देवमनुष्य स्थानेषु वाक् प्रतिरूपया मायया चरति। कि कुर्वन्। अफलामपुष्पाम् वाचोऽर्थः पुष्पफलम्। अर्थवर्जिताम्। शुश्रावान्। केवल पाठमात्रेणैव श्रुतवान् स चरति। यथा वन्ध्या पीना गौः किं द्रोण मात्रं चीरं दोग्धीति मायामुत्पादयन्ती चरति। यथा बन्ध्यो वृक्षोऽकाले पल्लवादि युक्तः सन् पुष्पयति फलतीति भ्रान्तिमुत्पादयंस्तिष्ठति तथा पाठं प्रबुवाणः चरतीस्यर्थः। जैसे बाँझ गाय दूध नहीं देती। या बाँझ वृक्ष पर फल फूल नहीं लगता। यह दोनों धोखे की टट्टी है। इसी प्रकार वेदों का अर्थ न जाननेवाला वेदपाठी है।

इमे ये नार्वाङ्न परश्चरन्ति न ब्राह्मणा सो न सुतेकरासः।
त एते वाचमभिपद्यपापया सिरीस्तत्रं तन्वते अप्रजज्ञयः।।

(ऋग्वेद- 10/71/9)

सायणाभाष्य :-

अनया वेदार्थामभिज्ञा निन्द्यन्ते।

इस ऋचा में वेद के अर्थ को न जाननेवालों की निन्दा है। जो अविद्वान लोग

Scanned by CamScanner

न विद्वानों का सत्संग करके लोग परलोक के धर्म को जानते और न यज्ञादि शुभ कर्म करते हैं वे वाणी को पापयुक्त करके अपनी जीवन सारणी को विस्तृत करते हैं।

सर्वथा वेदार्थो ज्ञेय इत्याभिप्राय:।

अभिप्राय यह है कि वेदार्थ अवश्य जानना चाहिये।

सत्कुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचकक्रम।

अत्रा सखाय: सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि।।

जैसे सत्ततुओं को चलनी में छानकर खाते हैं। इसी प्रकार जो पुरुष मन से सोचकर ज्ञानपूर्वक वाणी बोलते हैं उनको मित्रों में ख्याति होती है और उनकी वाणी में लक्ष्मी रहती है।

अर्थज्ञानं वाचि पश्यामइत्यर्थ:। (सायण)।

वाणी में अर्थ का ज्ञान देखते हैं।

जहाँ कहीं वेद अशुद्ध पढ़ने का निषेध किया है। वहाँ अभिप्राय यह है कि लोग शुद्ध पाठ सीखें। यह अभिप्राय नहीं कि अशुद्धि के भय से पाठ ही छोड़ बैठे। आरम्भ में जब विद्यार्थी वेद पढ़ेगा तो अशुद्धियाँ भी होंगी ही। इससे उस का सिर तो नहीं कट सकता। सकल, शक्ल, सकृत, शकृत आदि की भूलें तो बहुत कम होती हैं। बहुत से ऐसे शब्द हैं जो अशुद्ध पढ़े जाकर भी भयानक भिन्नता उत्पन्न नहीं करते। अत: वेद पढ़ना अवश्य चाहिये। साथ में शुद्ध पढ़ने और अर्थ जानने का भी पूर्ण उद्योग करते रहना चाहिये। पंडितों ने अशुद्ध पाठ के भयानक अलौकिक परिणाम बताकर लोगों को इतना डरा दिया कि वेद पढ़ना ही बन्द हो गया। और कुछ लोगों ने केवल शुद्ध पाठ में ही जीवन बिता दिया। अर्थ न सीखें। वह इस धोखे में रहे कि पाठ मात्र से ही अलौकिक फलों की उपलब्धि होगी। हानि दोनों प्रकार से हुई। किसी भूल से जो हानि होती है। उसकी मात्रा के वितरण में अत्युक्ति नहीं करनी चाहिये। अन्यथा कुछ करना है और कुछ हो जायगा।

प्रश्न- आप मानते हैं कि ईश्वर की ओर से आदि सृष्टि में ऋषियों पर वेद प्रकट हुय। यदि ईश्वर आदि सृष्टि के ऋषियों को वेद दे सकता है तो आजकल के भारतीय या भारत के बाहर अन्य देशों के महापुरुषों को भी वेदों या आध्यात्मिक चीजों का ज्ञान दे सकता है। क्या यह ईश्वर की शक्ति से बाहर था कि अरब में मुहम्मद साहेब की या फलस्तीन में ईसा मसीह को ज्ञान दे देता।

उत्तर- यह बात ईश्वर के सामर्थ्य से तो बाहर नहीं परन्तु आवश्यकता के विरुद्ध है। यों तो ईश्वर सबके आत्मा में नित्य शुद्ध प्रेरणा किया करता है और

उच्च आत्मायें उस प्रेरणा से प्रीभावित होकर उपदेश ग्रहण करती है। परन्तु वेद उस समय प्रादुर्भूत हुआ जब अन्य ज्ञान था ही नहीं। और ज्ञान के आरम्भ की आवश्यकता थी। उस समय ऋषियों को जो ज्ञान हुआ वह ईश्वर-प्रदत्त ही कहा जा सकता है। आज यदि कोई दावा करे कि मुझे अमुक ज्ञान ईश्वर से मिला है तो यह सिद्ध करना होगा कि वह ज्ञान उसे अन्य साधनों से नहीं मिल सकता था। हर मनुष्य में यह शक्ति है कि वह अपनी किसी मानसिक इच्छा या कल्पना या उपज को ईश्वर की ओर से आया हुआ कह दे या समझ ले। परन्तु जब वही ज्ञान संसार में प्रचलित हो रहा है तो ईश्वर की ओर से आने का प्रश्न ही उठाना व्यर्थ है। ईश्वर निर्मित सूर्य एक बार बनकर अब तक काम दे रहा है। इसका यह अर्थ तो है नहीं कि ईश्वर के पास अब सूर्य बनाने की शक्ति या सामग्री नहीं है। मुहम्मद साहेब ने अरब को कुरान के रूप में जो ज्ञान दिया। उसमें कोई ऐसी बात नहीं है जिसका अरब में पहले बीज न था। भाषा वही है जो अरब में प्रचलित थी, एक भी नया शब्द नहीं है। इन शब्दों के अर्थ भी वही हैं जो पहले प्रचलित थे। 'अल्लाह' शब्द का धातु रूप यद्यपि प्राचीन इब्रानी भाषा से आया तो अरबी से मिलती जुलती थी। परन्तु अरब में कुरान से पहले अल्लाह शब्द का प्रचार था। अत: न तो नये शब्द आये और न नये अर्थ। हाँ! मुहम्मद साहेब का इतना यश अवश्य है कि उन्होंने उपलब्ध सामग्री का इस प्रकार प्रयोग किया कि उनके समय में अरब की दशा सुधर गई। प्रत्येक युग और देश के सुधारक ऐसा करते हैं। मात्रा और प्रकार में भेद होता है। ऐसा ही अन्यत्र भी समझना चाहिये।

प्रश्न- हम वेद की प्राचीनता का निषेध नहीं करते और न वेदों की उपयोगिका में सन्देह करते हैं। परन्तु वेद के ईश्वर-प्रदत्त होने की बात हमारी समझ में नहीं आती।

उत्तर- आप विचार करें। और विचार के पश्चात् भी यदि आपको वेद के ईश्वर-कृत होने पर श्रद्धा न हो तो जाने दीजिये। वेदों की उपयोगी बातों को ही कार्य रूप में परिणित कीजिये। इससे संसार में सच्चरिता बढ़ेगी, और मानवता का प्रचार होगा। सच्चाई कहाँ से आई यह प्रश्न नहीं। सच्चाई सच्चाई है। उस पर चलना आवश्यक है। पहाड़े की जिस पुस्तक में 2 या 4 का पहाड़ा दिया है उस पुस्तक को किसी ने बनाया हो उसके अनुकूल सभी आचरण करते हैं और सभी उसको सच मानते हैं। संसार में आम खाने वाले लोग भी हैं और आमों को गिनने, और उनको उगाने और उसी रक्षा करने वाले लोग भी हैं। आप अपने को किसी कोटि में रख सकते हैं।

Scanned by CamScanner

प्रश्न- क्या अन्य धर्म की पुस्तकों में कुछ सच्चाई नहीं? यदि है तो आप उन को वेदों के समान मौलिक मानने से क्यों इनकार करते हैं।

उत्तर- हमको उनकी सच्चाईयों से इनकार नहीं अपितु मौलिक मानने से इनकार है क्योंकि वे सचाइयाँ हमको साक्षात् रूप में उनसे पुरानी पुस्तकों में मिलती हैं। हम यह भी देखते हैं कि कुछ सचाइयाँ कुछ विकृत हो गई हैं उनका शुद्ध रूप पूर्व की पुस्तकों में मिलता है। फिर उनको मौलिक मानना अयुक्त ही ठहरता है।

प्रश्न- जो अच्छी बातें आप वेदों से दिखाते हैं वहीं दूसरे लोग दूसरी पुस्तकों से फिर आपके वेदों की विशेषता क्या रही?

उत्तर- प्राचीनता की विशेषता तो आपको माननी पड़ेगी। जिसको अपने आविष्कार करने का दावा है उसे यह सिद्ध करना होगा कि उससे पहले उस वस्तु की सत्ता न थी। आपने हम पर उलटा दोष लगाया। आप यह प्रश्न उन नये लोगों से पूछिये कि जब अमुक सच्चाई वेदों में थी तो तुम अपने को मौलिक आविष्कारक क्यों मानते हो। अनुयायी मानने में कोई दोष नहीं।

प्रश्न- क्या वेद में कोई ऐसा सिद्धान्त भी है जो नवीन धार्मिक पुस्तकों में नहीं मिलता?

उत्तर- कई हैं, इनका विवरण अन्यत्र नहीं मिलता। और यदि मिले भी तो उसको अनुकरण ही करना पड़ेगा। चाँद को चाँद ही कहिये, सूर्य को सूर्य!

अध्याय–3

ईश्वर

(1) ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।

(**यजुर्वेद**- 40/1)

इस जगती अर्थात संसार में जितना जगत् अर्थात् प्रगति-समूह है, वह सब एक अधिष्ठातृ-शक्ति द्वारा ओत-प्रोत है जिसको ईश या ईश्वर कहते हैं।

(2) यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(**ऋग्वेद मण्डल**- 10/121/13)

जो साँस लेने वाले और पलक मानने वाले (जीव धारियों) का अपनी महत्ता के बल से प्रकाशक या स्वामी है, जो दोपायों और चौपायों सभी को वश में रखता है उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम समग्र सामग्री से उपासना करें।

संसार में दो प्रकार के पदार्थ मिलते हैं-चेतन और जड़ या चर और अचर। जड़ या अचर वे हैं जो गतिशून्य हैं। जैसे कुरसी, मेज, आदि। चेतन या चर वह हैं जो गतिवान् या गति-प्रेरक हैं। चर या चेतन अपनी गति जड़ या अचर को उधर दे देते हैं। इससे जड़ पदार्थ भी गतिवान या चर जैसे हो जाते हैं। उदाहरण के लिये कलम जड़ है। वह स्वयं नहीं चल सकती। परन्तु जब मेरे हाथ में आती है तो मेरी गति को प्राप्त करके स्वयं चलने लगती है। उधार ली हुई वस्तु अपनी नहीं होती। कलम तभी तक चलती है जब तक मैं उसमें गति का संचार करता रहता हूँ। मैंने कलम को गति दी, यही नहीं इस पृष्ठ पर मैंने जो कुछ लिखा है वह वस्तुतः कलम का लिखा हुआ है। शब्द, वाक्य, उनमें ओत-प्रोत ज्ञान यह भी कलम से आविर्भूत हुआ है। अब यदि कोई कलम से पूछे कि क्या तुझे हिन्दी भाषा आती है। क्या तू अंग्रेजी आदि अन्य भाषायें भी जानी है? कलम क्या उत्तर देगी? कुछ भी नहीं! क्यों? इसलिये कि कलम ज्ञान शून्य, गतिशून्य अचेतन जड़ वस्तु है। वह यह भी नहीं समझती कि उसमें कोई कुछ पूछ रहा है। परन्तु जो कलम मेरे हाथ में हिन्दी लिख रही है वही किसी रूसी विद्वान् के हाथ में रूसी भाषा लिख सकती है। जो मेरे हाथ में ईश्वर-विषय का प्रतिपादन कर रही है वह किसी गणितज्ञ के हाथ में गणित के कठिन से कठिन प्रश्नों का समाधान करती है। कलम सब भाषाओं की ओर सब प्रकार की विद्याओं की

Scanned by CamScanner

प्रकाशिका है। परन्तु यह सब उस चेतन की चेतना का खेल है जो भाषा और भावों का कोष है। वह चेतन शक्ति क्या है? आप उसे देख नहीं सकते। न वह काली है? न मोटी, न लम्बी न चौड़ी। फिर भी है! एक चीज है। उस चीज के क्या गुण हैं? क्या लक्षण हैं? हम उसको कैसे पहचान सकते हैं? वह आँखों से दिखाई नहीं देती, कान से सुनाई नहीं देती। नाक से सूँधी नहीं जा सकती, त्वचा से छूई नहीं जा सकती, जीभ से चखी नहीं जा सकती। फिर भी है। हमको प्रतीत होती है। हम उससे इनकार नहीं कर सकते। क्यों? वह स्वयं सिद्ध है। आप सब चीजों से इनकार कर सकते हैं परन्तु अपने अस्तित्व से तो इनकार करना असम्भव है और कहेगा कि मैं नही हूँ"। कपिल मुनि ने सांख्य दर्शन में इसीलिये कहा था :-

देहादि व्यक्तिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात्। षष्ठी व्यपदेशादपि।

(सांख्य दर्शन- 6/1/2)

अर्थात् चेतन सत्ता विचित्र है। यह देह से अलग है। परन्तु देह के प्रति अंग को चेतन कर देती हैं। आँखों को देखने वाला और कान को सुनने वाला बना देना। इसी का काम है। यह न आँख है न कान। परन्तु आँख को प्रेरित कर के आँख हो जाती है और कान को प्रेरित करके काम। मैं देखता हूँ, यह मेरी आँख है। मैं सुनता हूँ, यह मेरी आँख है। मैं सुनता हूँ। यह मेरा कान है। मेरे आँख है। परन्तु मैंने आपको नहीं देखा। मेरा ध्यान दूसरी ओर था। मेरे कान हैं परन्तु मैंने आपकी बात नहीं सुनी। मेरा मन दूसरी बात में लगा था। इस प्रकार के वाक्य आप नित्य प्रति करते रहते हैं। यह वाक्य सार्थक हैं निरर्थक नहीं, क्यों? इसलिये कि आप वह विचित्र सत्ता हैं, आप अनुभव करते हैं कि मैं हूँ और मेरा दूसरी चीजों से सम्बन्ध है। अर्थात् आप चेतन हैं और आप जड़ चीजों को गति की प्रेरणा भी कर सकते हैं। यही भेद है चेतन और जड़ का। जितना आप अपनी प्रगतियों का विचार उरेंगे, उतना ही आपको अपनी सत्ता का अनुभव होगा।

इससे आप पर एक बात मुख्यतया विदित हो जाती है। वह यह कि अपनी इन्द्रियों से संसार की सभी चीजों का ज्ञान नहीं होता। कुछ चीजें अगोचर भी हैं। अदृष्य और अदृष्टव्य, अश्रुत और अश्रोतव्य। फिर भी हैं, आप इनसे इनकार नहीं कर सकते। इन सत्ताओं को आप कैसे जानते हैं। कुछ का ज्ञान आपको स्वयं हो जाता है। जैसे आप अपनी सत्ता का नित्य अनुभव करते हैं। और यदि कोई

आपसे कहे कि "आप नहीं है" तो आप इसको मानेंगे नहीं। कुछ का ज्ञान आपको उन जड़ वस्तुओं के द्वारा होता है जिनमें उन चेतन सत्ताओं की गति ऋण रूप उपस्थित है। जैसे जब तक मैं साँस लेता हूँ, पलक मारता हूँ या शरीर के किसी अंग को हिलाता हूँ आप मेरे अस्तित्व को मानते हैं। साँस बन्द हो जाये, नाड़ी गतिशून्य हो, हृदय की धड़कन बन्द हो, पलक न उठें तो आप कहेंगे "यह मनुष्य मर गया"। अर्थात् मुख्य 'चेतन सत्ता' यहाँ से चली गई। अब यह शरीर नहीं अपितु शव है।

जिस प्रकार जड़ नाक कान चेतन प्रेरित गति को प्रकट करते हुये अपने प्रेरक की सत्ता का प्रतिपादन करते हैं इसी प्रकार जगत् की अन्यान्य जड़ वस्तुयें अपनी गति के किसी अन्य प्रेरक की ओर संकेत करती है।

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वास सूर्यम्।

(यजुर्वेद- 8/41)

संसार की वस्तुयें सब पदार्थों का ज्ञान रखने वाले सूर्य के लिये केतु अर्थात् झंडियों का काम करती हैं, अर्थात् इन सब वस्तुओं से उस महान ईश्वर की सत्ता का पता लगता है, जिसके जानने से हम समस्त संसार का यथोचित ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इस वेद मन्त्र में दो मुख्य बातें बताई हैं। विश्व ईश्वर का पता देता है और ईश्वर के ज्ञान से विश्व का परिज्ञान होता है। अन्योन्याश्रय भाव है, अन्योन्याश्रय दोष नहीं। जिन वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध होता है उनमें से प्रत्येक दूसरे का परिज्ञान प्राप्त करती है। घड़ी से घड़ीसाज का पता चलता है और घड़ीसाज को समझकर हम घड़ी का परिज्ञान उपलब्ध करते हैं। आँख बताती है आँख से देखने वाला कोई आत्मा है। उसने आत्मा का पता दिया। जब आत्मा को समझ लिया तो आँख का प्रयोजन समझ में आ गया। क्योंकि आँख है आत्मा के ही किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये। कहीं पर रक्खी हुई मोटरकार को देखकर आप पूछने लगते हैं कि यह किसकी मोटर है। परन्तु मोटर की पूरी उपयोगिता तो मोटर के स्वामी की प्रवृत्ति को समझकर ही ज्ञात होती है। यदि मोटर का स्वामी व्यापारी है तो मोटर व्यापार के उपयुक्त है भी। यदि वह कृषक है तो कृषक के उपयोगी।

इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, समुद्र, नदी सभी वस्तुयें जड़ होते हुये भी चेतन सदृश्य काम करती हैं। उनमें गति है परन्तु अपनी नहीं। किसी अन्य

Scanned by CamScanner

प्रेरक की। वैदिक भांषा में प्रेरक के लिये सबसे अच्छा शब्द 'सविता' है। क्योंकि वह समस्त जगत् को गति देता है।

यहाँ प्राय: यह प्रश्न होता है कि जो ईश्वर आँख से दिखाई नहीं देता, उस पर कैसे विश्वास किया जाय। इस विषय में ऋग्वेद का एक मन्त्र है-

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुते माहुर्नैषे अस्तीत्येनम्।
सो अर्य: पुष्टीर्विजइवाभिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्र:।।

(ऋग्वेद- 2/12/5)

प्रश्न- यं स्मा पृच्छन्ति-लोग पूछते हैं

कुह सेति घोरम्-वह डराने वाला कहाँ है? क्यों व्यर्थ ही ईश्वर ईश्वर कह कर हमको डरा रहे हो।

उतेमाहु: नैषो अस्तीति एनम्-उसके विषय में तो यही कहा जा सकता है कि वह कहीं नहीं। होता तो दिखाई न देता।

उत्तर- ऐसा मत कहो।

स: विजइव अर्थ: पुष्टी: अभिनाति-वह विरोधी शक्तियों को विवेकवान् के समान नष्ट कर देता है। ईश्वर वह शक्ति है जिसके आगे किसी की नहीं चलती। आप प्रकृति के नियमों को कितना ही वश में करें, कहीं न कहीं से कोई ऐसी बात हो जायगी कि आपका मार्ग रुक जायगा। अंग्रेजी में कहते हैं (**Man proposes and god disposes**) (मैन प्रोपोजेज एण्ड गॉड डिस्पोजेज) मनुष्य योजना बनाता है और ईश्वर उसको तितर बितर कर देता है। मनुष्य की कितनी योजनायें विफल हो जाती हैं। यदि संसार केवल जड़ होता तो उसके नियमों की शक्ति का पता तो मनुष्य को तभी चलता है जब उसकी गति रुक जाती है इसलिये वेद कहता है।

श्रत् अस्मै धत्त-उस पर श्रद्धा करो।

हे जनास:-हे लोगों

स इन्द्र:-वही ईश्वर है।

प्रश्न- इसी प्रकार का प्रश्न एक और मन्त्र में किया गया है:-

प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति।
नेन्द्रो अस्तीति उत्व आह क ई ददर्श कमभिष्टवाम।।

(ऋग्वेद- 8/100/3)

प्रसु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय-हे प्रयत्नशील लोगों तुम इन्द्र की स्तुति

करो। ऐसा गुरुजनों का उपदेश है।

सत्यं यदि सत्यमस्ति-हम मानने को तैयार हैं यदि यह सत्य हो।

नेन्द्रो अस्तीति नेम उत्व आह-कुछ लोगों का कहना है कि इन्द्र तो कोई है ही नहीं।

क ई ददर्श-उसको किसने देखा है।

कं अभिष्टवाम-(कमभिष्टवाम)-फिर हम स्तुति किसकी करें।

उत्तर- यह तो 'नेम' अर्थात् अधूरी बुद्धि वालों का कहना है, जो केवल स्थूलदर्शी हैं और पूरे विवेक से काम नहीं लेते।

(नोट-त्यो नेम इत्यर्धस्य-निरुक्त 3, 20)

अयमस्ति जरित: पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मन्हा।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्ता ददिरो भुवना ददरीमि।।

(ऋग्वेद- 8/100/4)

ईश्वर कहता है।

जरित:-हे स्तुति करने वाले। क्यों सन्देह करता है?

अयमस्मि-मै तो यह रहा। तेरे ही पास!

पश्य मा इह-मुझे तू अपने निकट ही देख।

विश्वा जातानि अभि अस्मि मन्हा-अपने महत्व के बल से मैं सब संसार पर आधिपत्य रखता हूँ।

ऋतस्य प्रदिश:-ऋतु अर्थात् कानून कुदरत (सृष्टि नियम)

के जानने वाले विद्वान लोग,

मा वर्धयन्ति-मुझको बढ़ाते हैं अर्थात् मेरे यश का प्रचार करते हैं।

आददिर:-संहार करने की शक्ति रखने वाला मैं,

भुवना-सब भुवनों अर्थात् जगत् का,

ददरीभि-संहार कर देता हूँ।

अर्थात्-ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता भी है पालक भी है और संहार भी वही करता है।

प्रश्न- हम तो सुना करते थे कि ब्रह्मा सृष्टि को बनाता है विष्णु पालन करता है और शिव उसका संहार करता है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन देव सृष्टि के रचयिता पालक तथा संहार कर्त्ता हैं।

उत्तर- इन तीनों देवों की कल्पना पुराण लिखने वाले लोगों की अपनी झूठी

Scanned by CamScanner

कल्पना है। वस्तुत: उत्पन्न, पालन और नाश करने वाला एक ही देव या ईश्वर है। उसको ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि आदि अनेकों नामों से पुकारा गया है। ईश्वर अनेक नहीं, उसके नाम अनेक हैं। देखों ऋग्वेद में कहा गया है :-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य: स सुपर्णो गुरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहु:।।

(ऋग्वेद- मण्डल 1, सूक्त 164 मन्त्र 46)

उसको लोग इन्द्र, वरुण, अग्नि, नामों से पुकारते हैं। वह दिव्य है, सुपर्णा है और गुरुत्मान है। वह एक है, विद्वान उसको अनेक नामों से कहते हैं। यहाँ स्पष्ट लिखा है-

एकं सद् विप्रा बहुधंघा वदन्ति।

वह एक सत्ता है। उसे विद्वान लोग बहुधा (बहुत नामों से) पुकारते हैं।

ईश्वर के अनेक गुण हैं। प्रत्येक गुण के लिये अलग-अलग नाम हैं। इसलिये ईश्वर के अनेक नाम होना स्वाभाविक है। इस मन्त्र में ईश्वर के जो नाम दिये हैं उनके अर्थ यह हैं :-

इन्द्र-ऐश्वर्य वाला।
मित्रं-(मित्रं प्रमीतेर्मरणात् ऋतारम्-सायणभाष्य)
मृत्यु से बचाने वाला।
वरुणा-वरण करने या ग्रहण करने योग्य।
अग्नि-पूजनीय।
दिव्य-ज्योति: स्वरूप।
सुपर्णा-(शोभनानि पर्णानि पालनानि यस्य स:)
जो भली भाँति जगत का पालन करता है वह
गुरुत्मान-(गुर्वात्मा-यास्क) परम आत्मा
यम-नियन्ता।
मातरिश्वा-अन्तरिक्ष में व्यापक।

इसी प्रकार जिन तीन नामों से तुमने तीन देवों या ईश्वरों की अलग कल्पना की है अर्थात् ब्रह्मा अलग, विष्णु अलग और महेश अलग, यह तुम्हारी कल्पना वेद विरुद्ध और भ्रम मूलक है। इसने व्यर्थ ही अडंगा लगाकर हिन्दुओं को दो भागों अर्थात् वैष्णवों और शैवों में विभक्त करके आपस में लड़ा मारा। देखो शिव का अर्थ तो संहार करने वाला है नहीं। 'शिव' का अर्थ है कल्याण करने वाला

ऐसे ही 'महेश' या 'महादेव' का अर्थ है बड़ा ईश्वर, संहार कर्त्ता नहीं। 'विष्ण' का अर्थ है व्यापक। ब्रह्म या ब्रह्मा का अर्थ है बड़ा।

प्रश्न- जब ईश्वर 'आदर्दिर:' अर्थात् संहार कर्त्ता है तो मित्र कैसा? ऐसे ईश्वर से तो दूर ही रहना चाहिये। ईश्वर हमके ऐसे गुण बताकर क्यों डराता है।

उत्तर- आप संहार का अर्थ ही नहीं समझे। जो चीज बनती है वह बिगड़ती भी है। यदि बिगड़े नहीं तो नई कैसे बने। वृक्ष को चीरा न जाय तो मेज कुर्सी कैसे बने? कपास को काता न जाय तो कपड़ा कैसे बने? समुद्र का पानी भाप न बने तो बादल कहाँ से आवें। पहाड़ कटे नहीं, तो नदी कैसे बने? यदि मनुष्य न मरें तो नया जन्म कैसे हो? इस प्रकार रचना, पालन और संहार एक दूसरे के पूरक हैं विरोधी नहीं। ईश्वर अपने को 'आदर्दिर:' कहकर आपको डराता नहीं, अपितु सचेत करता है। कि कहीं आप अपने को सदा रहने वाला समझकर अभिमानी और अत्याचारी न हो जायें।

प्रश्न- हम कैसे जाने के ईश्वर है या नहीं। अथवा कैसा है कैसा नहीं। सृष्टि के देखने से तो ईश्वर का पता नहीं चलता। ईश्वर हमें दिखाई नहीं देता। पुस्तकों में ईश्वर के विषय में बहुत कुछ लिखा है पर उन पर कैसे विश्वास करें।

उत्तर- आप अपनी इन्द्रियों, अपने ज्ञान और सृष्टि पर तो विश्वास करेंगे? यदि आपको इन पर भी विश्वास नहीं है तो आपकी अवस्था अवश्य ही शोचनीय और दयनीय है। परन्तु आपको यदि अपने ज्ञान के साधनों पर विश्वास है जो सर्वथा नैसर्गिक है तो आपको ईश्वर के अस्तित्व पर भी विश्वास करना ही पड़ेगा।

हम ऊपर दिखा चुके हैं कि सभी चीज इन्द्रिय गोचर नहीं हैं और न सभी चीजों को सभी इन्द्रियों से जान सकते हैं। आँख रूप बताती हैं शब्द नहीं। कान शब्द का परिचय कराता है स्वाद का नहीं। त्वचा से आप यह जान सकते हैं कि अमुक वस्तु में सुगन्ध है या नहीं। पाँचों इन्द्रियों से सुख-दुख का भान नहीं होता। इसके लिये मन चाहिये। सुख-दुख को आप देख नहीं सकते फिर भी आप सुख-दु:ख के होने से इनकार नहीं कर सकते। जो चीज प्रत्यक्ष होती है, वह थोड़ी देर के पश्चात् ही परोक्ष हो जाती है। फिर क्या उसके अस्तित्व से भी इनकार किया जा सकता है? इसलिये यह कहना तो सर्वथा असंगत और अयुक्त है कि जो वस्तु दिखाई न पड़े वह है ही नहीं।

प्रश्न- तो क्या जो वस्तु दिखाई ना पड़े उसे मान ही लें?

Scanned by CamScanner

इस प्रकार तो हमको आकाश के फल और खरगोश के सीगों पर भी विश्वास करना पड़ेगा।

उत्तर- हम यह नहीं कहते कि जो चीज दिखाई न पड़े उसे मान ही लो। हमारा तो केवल यह कहना है कि किसी सत्ता का आँख से दिखाई न देना उसके नास्तित्व का हेतु नहीं हैं। हम बहुत सी वस्तुओं को बुद्धि से जान सकते हैं। हमारे पास सैकड़ों ऐसी वस्तुयें रहती हैं जिनके बनाने वालों को हमने कभी नहीं देखा और न देख सकेंगे फिर भी हम मानते हैं कि इन वस्तुओं का बनाने वाला कोई है।

प्रश्न- हम उन वस्तुओं के बनाने वाले का अनुमान करते हैं जिनके लिये निश्चय है कि वह स्वयं नहीं बन सकतीं।

उत्तर- ठीक! क्या आप ऐसी वस्तुयें बता सकते हैं जो स्वयं बन जाये?

प्रश्न- हाँ! जैसे जल आक्सीजन और हाइड्रोजन के स्वभावत: मिलने से बन जाता है।

उत्तर- जल में जल का स्वभाव है या आक्सीजन और हाइड्रोजन का?

प्रश्न- जल का।

उत्तर- जल का स्वभाव जल बनने से पहले था या नहीं।

प्रश्न- किसी चीज का स्वभाव उसके अस्तित्व में आने से पहले नहीं हो सकता।

उत्तर- ठीक! इसलिये जब तक जल बनने नहीं पाया था। तब तक उसका स्वभाव भी न था। फिर जल अपने स्वभाव से नहीं बना।

प्रश्न- आक्सीजन और हाइड्रोजन तो थे। उन्हीं से स्वाभाविक नियम के अनुसार जल बन गया।

उत्तर- आप अपने कथन का अर्थ तो सोचिये। जल जल के स्वभाव (अपने निज भाव) से नहीं बना। जब जल न था तो जलत्व भी न था। वह दूसरी वस्तुओं के स्वभाव से बना अर्थात् पर भाव से। फिर यह कहना ठीक नहीं कि वस्तुयें अपने स्वभाव से बनती हैं। आक्सीजन का स्वभाव था जल का नहीं। हाइड्रोजन में हाइड्रोजन का स्वभाव था जल का नहीं। फिर जल किसके स्वभाव से बना?

प्रश्न- कुदरत के नियम से?

उत्तर- कुदरत नियम से अलावा कोई वस्तु है अथवा नियम का नाम ही कुदरत है?

प्रश्न- यदि हम नियम और कुदरत को एक ही मान लें तो क्या हानि?

उत्तर-तो कुदरत और नियम कोई चेतन वस्तु माननी पड़ेगी जो आक्सीजन और हाइड्रोजन को वश में रख सके और नियत समय में नियत मात्रा में उनको मिला और अलग कर सकें।

प्रश्न- इसमें हमारी क्या हानि?

उत्तर- हानि कुछ नहीं। केवल इतनी बात है कि इसी को ईश्वर कहेंगे और आपको अपना अनीश्वरवाद छोड़ना पड़ेगा।

प्रश्न- हम कुदरत को चेतन मानते हैं। ईश्वर नहीं मानते।

उत्तर- यह तो "नाम" मात्र भेद रहा। चेतन सत्ता तो सिद्ध हो गई। इसी प्रकार आप अपने शरीर के समस्त संगठन कर विचार कीजिये। आपके शरीर का प्रत्येक अवयव ईश्वर के अस्तित्व की साक्षी है।

प्रश्न- कैसे?

उत्तर- अपनी आँख को लीजिये।

(1) आँख एक बनी हुई वस्तु है। एक समय था जब आपका शरीर ऐसी अवस्था में था जब यह एक अव्यक्त जल सदृश द्रव वस्तु था। इसमें आँखें नहीं बन पाई थीं।

(2) आँखों को आपने नहीं बनया। आप अब भी आँखों के निर्माण या संस्करण के विषय में कुछ नहीं जानते।

(3) आँख स्वयं अपना कर्त्ता नहीं है। कर्त्ता कार्य से पहले विद्यमान होना चाहिय। जो चीज पहले हो ही न उसको आप किसी चीज का बनाने वाला कैसे कह सकते हैं?

(4) आँख की आकृति और उसकी उपयोगिता से अपूर्व अद्‌भुत और प्रचुर ज्ञान का प्रदर्शन होता है। किसी आँख के डाक्टर से पूछो वह बतायेगा कि 'आँख' के समझने के लिये भी कई विद्याओं के जानने की आवश्यकता है। बनाने के लिये तो और भी अधिक?

(5) आँख के कार्य और सूर्य के कार्यों में इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि जो आँख को बनाता और उसका नियन्त्रण करता है उसी से सूर्य को बनाया है और वही उस पर नियन्त्रण करता है। अर्थात् जिस सृष्टि रूपी मशीन का एक पुर्जा सूर्य है उसी का एक छोटा सा पुर्जा आंख भी है।

(6) आँखें बहुत सी हैं और वह एक समान काम करती हैं। अत: उनका

Scanned by CamScanner

निर्माण आकस्मिक नहीं हो सकता।

इससे स्पष्ट है कि जिससे आंख बनाई वह सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सर्व-व्यापक, चेतन्य है। वह दयालु भी है क्योंकि हम पर दया करके उसने आंखें दीं। इससे ईश्वर के इतने गुणों का पता चल गया। ज्ञान, व्यापकता, शक्तिमत्ता, दयालुता।

प्रश्न- आँख को देखकर ईश्वर के किस ज्ञान का पता चलता है? और कैसे?

उत्तर- कुर्सी को देखकर आप कुर्सी बनाने वाले के किस ज्ञान का पता चलाते हैं?

प्रश्न- कुर्सी का बनाने वाला इतनी बातें अवश्य जानता होगा। कि किस-किस प्रकार की लकड़ी से कुर्सी बनती है? लकड़ी को कैसे चीरा जाता है। उस चिरी हुई लकड़ी को किस प्रकार जोड़ते हैं। किस प्रकार जुड़ने से यह मनुष्य के अधिक उपयोगी हो सकती है। मनुष्यों की लकड़ी के विषय में क्या प्रकृति है? और क्यों?

उत्तर- ठीक! इसी प्रकार आंख का बनाने वाला रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, प्रकाश शास्त्र, शरीर शास्त्र, वर्णशास्त्र, मनुष्य के मनोविज्ञान का पूर्णज्ञ होगा और जानता होगा कि आंख बनाने की रीति, उसकी सामग्री, प्रयोजनवत्ता क्या है! आपने चश्मा (उपनेत्र) बनाने वाले पुरुषों को देखा है। उनको किस किस साइंस (विद्या) का परिज्ञान है। यह आप जानते हैं। चश्मा का निर्माण तो आंख को देखकर ही किया गया है। चश्मा एक प्रकार से आंख का सहायक है। यदि चश्मा बनाने के लिये ज्ञान की आवश्यकता है तो मूल आंख का बनाने वाला कितना बड़ा ज्ञानी होगा। यह सोचने का यत्न कीजिये।

त्वमग्ने प्रथमो अंग्निरस्मतः कविर्देवानां परिभूषसि व्रतम्।
विभुर्विश्वरमै भुवनाम मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे॥

(ऋग्वेद- 1/31/2)

हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! आप समस्त ज्ञानियों से भी बड़े ज्ञानी हो। आप देव अर्थात् समस्त विद्यावान् लोगों के व्रतों को अलंकृत करते हैं। आप विभु अर्थात् सर्वव्यापक हैं। आप समस्त सृष्टि का ज्ञान धारण करने वाले हैं। आप द्योलोक और पृथ्वी लोक के निर्माता हैं। आप मनुष्यों के लिये विविध प्रकार की विभूतियों का निर्माण करते हैं जो हमारी समझ से भी बाहर हैं।

ईश्वर सृष्टि को कैसे बनता है इस बात का प्रतिपादक ऋग्वेद के 10वें

मण्डल का 82वाँ सूक्त है। इस में ईश्वर को विश्वकर्मा अर्थात् जगत् का निर्माता बताया है। इस सूक्त में ईश्वर के गुणों का वर्णन सुन्दर रूप से किया गया है। आप नीचे देखिये:-

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्न माने।
यदेदन्ता अद्दृहन्त पूर्वे आदिद् द्यावा पृथिवी अप्रथेताम्।

(ऋग्वेद- 10/82/1)

चक्षुषः । पिता मनसा । हि । धीरःदृतम् । एने । अजनत् । नग्नमाने। यदा इत् । अन्तोः । अददृहन्ता । पूर्वे । आत् । इत् । द्यावापृथिवी । अप्रथेताम्।

इन्द्रियों के पालक और मन वाले परमात्मा ने इधर उधर बहने वाले अर्थात् अनिश्चित आकृति वाले जल को उत्पन्न किया। फिर चीजों की आगे पीदे की सीमायें नियत हुई और द्यौ और पृथिवी अपने अपने स्वरूप में आविर्भूत हुये।

भाव यह है कि जैसे अण्डे में पहले तरल पदार्थ होता है फिर उसी में पक्षी के शरीर की सीमायें निश्चित होकर शरीरावयव व्यक्त हो जाते हैं उसी प्रकार विश्वकर्मा ने पहले तरल पदार्थ उत्पन्न करके फिर समस्त पदार्थों की सीमायें व्यक्त कर दीं और द्यौलोक और पृथिवी लोक बन गये।

विश्वकर्मा विमना आद् विहाया धाता विधाता परमोत संदृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः॥

(ऋग्वेद- 10/82/2)

विश्वकर्ता । विमना । आद् । विहाया । धाता । विधाता । परम। उत । संदृक् । तेषां । इष्टानि । सम् । इषा । मदन्ति । यत्र । आ। सप्त । ऋषीन् । परः । एकम् । आहुः।

वह परमात्मा विश्वकर्मा अर्थात् संसार को बनाने वाला। विमना अर्थात् विशेष ज्ञान वाला, विविध पुकार के सुकृत और दुष्कृति कर्मों के फलों का दाता, धाता, विधाता और सबको देखने वाला है। सप्तऋषि रूपी इन्द्रियाँ उसी एक प्रभु से प्रेरणा लेती है। और परमात्मा के दिये हुये इषा (अन्न) या पुष्टि दायक सामग्री से ही इनकी पुष्टि होती है।

अर्थात ईश्वर अनन्त ज्ञानवान और सबका द्रष्टा है। उसी एक ईश्वर से इन्द्रियों को प्रेरणा मिलती है और वही इनको अनेक प्रकार की सामग्री से पुष्ट करता है।

योनः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।

Scanned by CamScanner

यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥

(ऋग्वेद- 10/82/3)

यः । नः । पिता । जनिता । यः । विधाता । धामानि । वेद। भुवनानि । विश्वा । यः देवानां । नामधा । एक । एव । तं । संप्रश्नं । भुवना । यन्ति । अन्या।

जो हमारा पालक, उत्पादक और विधाता जो सब भुवनों और धामों को जानता है जो अकेला देवों का नाम रखने वाला है। उसी को अन्य भुवन पूछकर प्राप्त होते हैं।

अर्थात् ईश्वर ने सृष्टि बनाई। वही उसको पालता है। वही धारक है। और उसी ने सब दिव्य पदार्थों के नाम रक्खे हैं। अर्थात भाषा का आरम्भिक ज्ञान ईश्वर ने ही दिया है। जो उसकी खोज करते हैं। उनको वह प्राप्त होती है।

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयःपूर्वे जरितारो न भूना।
असूर्ते सूर्ते रजिस निषत्ते। ये भूतानि समकृणवन्निमानि॥

(ऋग्वेद- 10/82/4)

ते । आ । अयजन्त । द्रविणं । सम । अस्मै । ऋषयः । पूर्वे। जरितारः । न । भूना । असूर्ते । सूर्ते । रजसि । निषत्ते । ये । भूतानि । सम्। । आकृणवन् । इमानि।

जिन पूर्व ऋषियों ने स्थावर और जंगम वस्तुओं में से लेकर पहले पहल इन पदार्थों को बनाया उन्होंने स्तोताओं के समान उस ईश्वर की स्तुति करके समस्त प्राप्त सामग्री से यज्ञ किया।

अर्थात् जब ईश्वर सृष्टि को बनाता है और ऋषियों को ज्ञान देता है तो वह लोग ईश्वर के बनाये हुये स्थावर और जंगम पदार्थों से संसार की। अद्भूत वस्तुयें बनाते हैं और उपार्जित वस्तुओं से यज्ञ करते हैं। मनुष्य ने संसार में जो वस्तुयें बनाई वह ईश्वर निर्मित वस्तुओं और ईश्वर प्रदत्त ज्ञान द्वारा।

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति।
कं स्विद् गर्भं प्रथमंदध्र आपो यत्र देवा समपश्यन्त विश्वे॥

(ऋग्वेद-10/82/5)

परः । दिवा । परः । एना । पृथिव्या । परः । दिवेभिः । असुरेः । यद् । अस्ति । कम् । स्वित् । गर्भम् । प्रथमं । दध्रे। आपः । यत्र । देवाः । सम् । अपश्यन्त । विश्वे।

यह ईश्वर द्यौ लोक से परे, पृथिवी से परे, विद्वानों से परे और असुरों से परे है। जलों ने पहले किस गर्भ को धारण किया। जिसको सब देवों ने देखा?

अर्थात् ईश्वर समस्त द्यौलोक और भूलोक से ऊपर है। उसके पार को किसी ने नहीं पाया। अव्यक्त आरम्भिक जल में वह कौन सी बीज शक्ति प्रभु ने डाल दी कि वही व्यक्त रूप होकर सृष्टि बन गई और विद्वान् लोग इसमें प्रभु की महत्ता का दर्शन करने लगे।

तमिगिद्भं प्रथमंदध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः॥

(ऋग्वेद-10/82/6)

तम् । इत् । गर्भम् । प्रथमम् । दध्रे । आपः । यत्र । देवाः। सम । अगच्छन्त । विश्वे । अजस्य । नाभौ । अधि । एकम् । अर्पितम् । यस्मिन् । विश्वानि । भुवनानि । तस्थुः ॥

जलों ने पहले उस बीज शक्ति को धारण किया। जिसमें सब देवों का समावेश हो गया। अजन्मा परमात्मा की नाभि में वह सम्पूर्ण सृष्टि जुड़ी हुई है। जिसमें सारे भुवन ठहरे हुई हैं।

अर्थात् एक ईश्वर ही सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है। उसी में सब लोक लोकान्तर ठहरे हुये हैं। उसी ने आरम्भिक जल में वह बीज शक्ति दी जो व्यक्त होकर जगत् का रूप धारण करती है।

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद् युष्माकमब्तरं बभूव नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्च रन्ति। (ऋग्वेद- 10/82/7)

न । तम् । विदाथ । यः । इमा । जजान । अन्यत् । युष्माकम् । अन्तरम् । बभूव । नीहारेण । प्रावतः । जल्प्या । च। असुतृपः। उक्तशासः चरन्ति ॥

जिसने इन सब पदार्थों को उत्पन्न किया उसको तुम नहीं जानते। तुम्हारा भीतर का हृदय बदल गया है। तुम कुहरे जैसे अन्धकार में पड़े हो। और बातें बनाया करते हों तुम प्राणों को तृप्ति करने के व्यापार में मस्त हो।

इस सूक्त में ईश्वर के विषय में इतनी बातें स्पष्ट हैं :-

(1) ईश्वर एक है।

(2) वह सृष्टि-कर्त्ता या विश्वकर्मा है।

(3) वह विधाता अर्थात् नियमों में सबको चलाने वाला है। वह सर्वज्ञ है।

(4) वह स्वयं अजन्मा है।

Scanned by CamScanner

(5) वह सर्व-व्यापक है।

(6) उसमें सब प्राणी और लोक लोकान्तर स्थित हैं।

(7) वह इन्द्रियों से परे है। उसका पार कोई पा नहीं सकता।

(8) वह हमारा पिता (पालक) और प्यारा है।

(9) परमात्मा जब सृष्टि बनाता है तो प्रकृति पहले जल (अव्यक्त तरल-अन्डे के जल के समान होती है। शनै: शनै: वही व्यक्त होकर सृष्टि का रूप धारण करती है। ईश्वर पहले बीज शक्ति (गर्भ या Potentiality) उत्पन्न करता है। वही विकसित होता रहता है।

(10) ईश्वर का अस्तित्व साधारण जनों को कुहरे के समान धुंधला दीखता है। वह खाने पीने और मौज उड़ाने में मस्त रहते हैं। वह केवल इतना ही सोचते हैं कि कोई ईश्वर है तो, क्या है यह ज्ञात नहीं। जब इनका हृदय शुद्ध होने लगता है तो ईश्वर भी अधिक साक्षात् हो जाता है।

प्रश्न- क्या ईश्वर 'कर्त्ता' है?

उत्तर- हाँ/ उसको इसीलिये 'सृष्टि कर्त्ता' कहते हैं कि वह सृष्टि रचता है।

प्रश्न- क्या ईश्वर के कर्तृत्व के विषय में शास्त्रीय प्रमाण भी हैं?

उत्तर- अवश्य। देखो :-

यदा पश्यः पश्यन्ति रुक्मवर्णा।
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्॥
तदा विद्वान् पुण्यपाते विधूम।
निरंजनः परमं शाम्यमुपैति॥ **(कठोपनिषद)**

जब जीव प्रकाश स्वरूप, कर्त्ता, ईश, पुरुष, वेदों के प्रकाश को देखता है तब सब पाप और पुण्य के द्वन्द्वों से छूटकर परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न- हम सुनते हैं कि ईश्वर 'द्रष्टा मात्र' है। वह किसी काम का कर्त्ता नहीं।

उत्तर- यह कल्पना भ्रममूलक है। ईश्वर 'द्रष्टा' तो है परन्तु 'दृष्टा मात्र' नहीं, जो कोई कर्त्ता होगा वह पहले द्रष्टा होगा। अन्धा तो कुछ नहीं कर सकता, परन्तु 'द्रष्टा' कहने से 'कर्तृत्व' का खण्डन नहीं होता।

प्रश्न- वेदान्ती तो ऐसा ही कहते हैं, ऋग्वेद (1/164/20) में लिखा है-

अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति।

जीव से भिन्न दूसरा अर्थात् ईश्वर खाता नहीं, केवल देखता है।

उत्तर- आपने ठीक समझा नहीं। यहाँ निषेध 'भोगने' का है न कि 'करने' का। 'अभिचाकशीति' के उपसर्ग 'अभि' पर विचार कीजिये। ईश्वर केवल दूर से देखकर निष्क्रिय नहीं हो जाता है। पूर्णरूप से देखता है और उसके अनुसार सृष्टि को रखता है। अंग्रेजी को ओवरसियर (Overseer) केवल देखता नहीं, अपितु रचता भी है। देखो वेदान्त में भी 'ब्रह्म' का लक्षण कहते हुये कहा है-

"जन्माद्यस्य यतः" **(वेदान्त**- 1/1/8)

अर्थात् ब्रह्म वह है जिस से सृष्टि की रचना, रक्षा और प्रलय होती है।

देखो वेद में :-

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्य्यूमरोचयः। विश्वकर्मा विश्वदेवो महा असि।
(ऋग्वेद- 8/98/2)

इन मन्त्र में स्पष्ट है कि ईश्वर 'विश्वकर्मा' हैं। उसने सूर्य को प्रभावित किया। वेद तो ईश्वर को 'विश्वकर्मा' बताता है और आप उसको 'कर्ता' भी नहीं मानते। यदि आप किसी कर्म को ईश्वर का किया हुआ न मानेंगे तो ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध भी न कर सकेंगे।

प्रश्न- ईश्वर को 'निर्विकार' कहते हैं जो, 'कर्त्ता' होगा उसमें विकार अवश्य होगा। जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है तो उसमें लिप्त हो जाता है। निर्लेप नहीं रह सकता।

उत्तर- आपने 'विकार' के लक्षण पर ध्यान नहीं दिया। विकार भोक्तत्व के कारण है, कर्त्तव्य के कारण नहीं। कुम्हार घड़े का कर्त्ता भी है और धन अर्थात् मूल्य का भोक्ता भी। उस में विकार 'कर्ता' होने के कारण नहीं अपितु धन का इच्छुक होने के कारण है। ऊपर के वेद मन्त्र में 'अनश्नन्' शब्द द्वारा ईश्वर के 'भोक्तत्व' का निषेध किया गया है। यदि आप शुद्ध दया से प्रेरित होकर निःस्वार्थ भाव से दूसरे के लिये कोई चीज बनाते हैं तो आप 'लिप्त' नहीं होते। न आपकी प्रकृति विकृत होती है। दयनीय जीव को देखकर यदि आप उपेक्षा करें, तो अवश्य ही आप पर जड़त्व का दोष लगेगा। इसी प्रकार यदि 'ईश्वर' केवल 'द्रष्टामात्र' होकर दूर से तमाश देखता रहे और सृष्टि से कुछ सम्बन्ध न रक्खे तो वह जड़ हो जायेगा। पदार्थ सृष्टि रचना 'निर्विकारत्व' का बाधक नहीं, अपितु प्रबल पोषक है। जैनियों का विकार से बचाने के हेतु कर्ता ईश्वर से इनकार करना और कुछ वेदान्तियों का इस दोष से बचाने के हेतु ईश्वर को केवल 'द्रष्टा' कहना दोनों अवैदिक हैं।

●●●

Scanned by CamScanner

- : मानव कल्याण के दस सूत्र :-

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करना योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार, अर्थात सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

Scanned by CamScanner